नव्या

नव्या की पहचान, स्वतंत्र अभिव्यक्ति का सम्मान

वर्ष : 1, अंक : 4
(फरवरी–अप्रैल : 2013)

इस अंक में :

• डायरी : विमलेश त्रिपाठी
• तीन कविताएँ : नन्द भारद्वाज

• दस्तावेज : 'सैनिक समाचार' : 100 साल की सैन्य पत्रकारिता का जीवंत दस्तावेजः संजीव शर्मा

• कहानी : जहर : रंजना श्रीवास्तव
• प्रकृति : प्रकृति का फलसफा है –बांधवगढ़ः डॉ. बसंत मिश्रा

• आलेख : मीडिया में प्रेम और आज की नारीः अर्चना चतुर्वेदी
• युवा पीढ़ी के कहानीकारों के लेखन में प्रेम–अभिव्यंजना : –पद्मा शर्मा

• विशेष :
चाय पीने का मेरा भी मन है : –पंकज त्रिवेदी

चित्र : विजेन्द्र एस विज

पंकज त्रिवेदी
संपादक
✽
शीला डोंगरे
सह संपादक
✽
अर्चना चतुर्वेदी
सहायक संपादक
✽
परामर्श
डॉ. सुधा ओम ढींगरा / डॉ. सिद्धेश्वर सिंह
सौरभ पाण्डेय
*
मुखपृष्ठ : श्री वीजेन्द्र वीज
*
वार्षिक सदस्यता : 200/- रुपये
आजीवन : 1500/- रुपये (सभी डाक खर्च सहित)
इस अंक का मूल्य 40/- रुपये
*
सम्पादकीय कार्यालय
नव्या प्रकाशन,
ॐ, गोकुलपार्क सोसायटी, 80 फीट रोड,
सुरेन्द्रनगर 363002 गुजरात
•
शाखा कार्यालय
अखिल हिन्दी साहित्य सभा (अहिसास)
फ्लेट नं. D-4, रोहन परिसर को.ऑ.हा.सोसायटी,
राणेनगर, नासिक - 422009 (महाराष्ट्र)
•
E-mail-website
Nawya.magazine@gmail.com
Www.nawya.in
Mobile : 096625 14007 / 09409270663

जरूरी सूचना

* * *

'नव्या' हेतु रचनाएं इस ई-मेल पर भेजें
nawya.magazine@gmail.com

✽

रचना को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने का अधिकार पूर्णरूप से सम्पादकीय मंडल का ही है.
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार है.
संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है.
यह **अवैतनिक** और **अव्यावसायिक** पत्रिका हैं

हमारे सहयोगी

सौरभ पाण्डेय	इलाहाबाद
वीनस केसरी	इलाहाबाद
डॉ. भावना तिवारी	कानपुर
संगीता सिंह तोमर	दिल्ली
संजय मिश्रा	रायपुर
मधु गुप्ता	नागपुर
खालिद सैयद	जलगांव

मुद्रक :

चंद्रिका प्रिन्टरी,
मिरज़ापुर रोड, अहमदाबाद –380 001
✽
chandrikaprintery@gmail.com
Mobile : 098253 36136

इस अंक में

संपादकीय		पंकज त्रिवेदी	3
पत्र	पाठकों की कलम से		4-6
डायरी	एक गुमनाम लेखक की डायरी	विमलेश त्रिपाठी	7
आलेख	मीडिया मे प्रेम और आज की नारी	अर्चना चतुर्वेदी	32
	युवा पीढ़ी के कहानीकारों के लेखन मे प्रेम-अभिव्यंजना	डॉ. पद्मा शर्मा	40
कहानी	मशीन	किरण राजपुरोहित "नितिला'	9
	ज़हर / मंथन	रंजना श्रीवास्तव / अर्चना ठाकुर	26/ 47
अभ्यास	हिन्दी-अनुसंधान की नयी चुनौतियों में ...	शालिनी पाण्डेय	14
दस्तावेज	सैनिक समाचार':100 साल की सैन्य पत्रकारिता...	संजीव शर्मा	18
यात्रा	जीवन एक अनवरत यात्रा	कुसुम ठाकुर	23
व्यंग्य	हिन्दी और मच्छर	शुभ्रांशु पाण्डेय	12
समीक्षा	कोमल अनुभूतियों का साक्ष्य	संतोष श्रीवास्तव	35
प्रकृति वर्णन	प्रकृति का फलसफा है- बांधवगढ़	डॉ. बसंत मिश्रा	36
लघुकथा	अंतर्ध्यान / रीति रिवाज - बेटियाँ	डॉ. त्रिलोकसिंह ठकुरेला / प्रतिभा शुक्ल	20 /21
साक्षात्कार	अमेरिकी कल्चर अपनाना ही तरक्की नहीं है - जॉन	डॉ. सुधा ओम ढींगरा	50
विशेष	चाय पीने का मेरा भी मन है ...	पंकज त्रिवेदी	53
आखरी पन्ना	एक नज़र	शीला डोंगरे	56
गज़ल	एक गज़ल	रघुनाथ मिश्र	45
कविता	परिकल्पना	नील सिंह	11
	ज़िंदगी	नीलम नागपाल मैदीरता	13
	शगुन / वजूद	अमित आनंद / ख्याति शाह	17
	फ़ागुन आया झूम के	सरिता भाटिया	19
	यात्राएं	लालित्य ललित	20
	तीन कविताएँ	नन्द भारद्वाज	22
	मुझसे मिलकर भी नहीं मिलती वो लडकी	रजनी भारद्वाज	38
	हे गाँव तुम्हारी बदहाली का..	डॉ. लाल रत्नाकर	39
	स्मृतियाँ	अरुण देव	45
गीत	गीत गाता हूँ... / बीते लम्हें	आरिफ़ जमाली / कवन आचार्य	25/ 34
समाचार	'नव्या तृतीय अंक लोकार्पण और अन्य खबरें	विश्वगाथा	62

संपादकीय

'**न**व्या' मुद्रित पत्रिका इस अंक के साथ अपना एक वर्ष पूर्ण करके दूसरे वर्ष की ओर अग्रसर हो रही है, इस एक वर्ष में न जाने कितने उतार-चढ़ाव हमने देख लिये | मैंने संपादन कार्य बड़ी मेहनत और लगन से किया मगर साथ ही ज़िंदगी के नए आयाम को पाने के लिये बड़ा संघर्ष भी किया | इस दौरान कई ऐसे मौके भी मिले जिसमें मैंने खुद ही के साथ बहुत अच्छे संवाद भी किये | उसी संवाद से मुझे एक नई दृष्टि मिली | साहित्य प्रीति होना अलग बात है और साहित्य को अपने कंधों पर बिठाकर उसे किसी गोरैया की तरह संभालना बड़ी चुनौती भी है | सफलता की अपेक्षा रखना इंसान का स्वभाव है मगर उसे प्राप्त करने में कड़ा पुरुषार्थ और फ़र्ज़ भी निभाना पडता है | मैंने आजतक वो ही कोशिश की और आज सुकून महसूस करते हुए आपसे खुशी बाँट रहा हूँ |

इस वर्ष में अनगिनत घटनाएँ देश में हुई, मगर इंसानियत को झकझोरकर रखने वाली एक घटना ने देश को जगा दिया | दामिनी पर हुए पाशविक अत्याचार ने देश को एकजुट कर दिया| साहित्य-शिक्षा का उत्तरदायित्त्व है कि एक सुरक्षित समाज का गठन हो | इसी वर्ष हमें एल.ओ.सी. से अपने जवानों के बलिदान की खबर मिली | लड़कर मौत से भेंट होना एक बहादुर सिपाही की नियति होती है मगर गद्दारों के ईशारे पर हमारे नौजवानों ने जान गंवाई वो कतई मंज़ूर नहीं है | इस घटना से हमारी राजनीति का जैसे खसीकरण हो गया |

हिन्दी भाषा के प्रति देश के विविध प्रांतो से जो जागरूकता के दर्शन हो रहे हैं उसकी सराहना अवश्य होनी चाहिए | 'नव्या' की देश-दुनिया के भारतीयों ने न केवल सराहना की है बल्कि उसे स्वीकार करने का उत्तरदायित्त्व भी निभाया है | यह बड़ी खुशी की बात हैं | हमने जब शुरुआती दौर में कदम रखा तो हिन्दी क्षेत्रों से कड़ी आलोचनाएँ झेलनी पडी थी | मगर यही कड़ी आलोचनाओं को हमने एक सकारात्मक दृष्टिकोण से स्वीकार किया और अपने हौंसले को मजबूत इरादों के साथ कदम बढ़ाते हुए उसे आशीर्वाद में तबदील कर देने का निश्चय भी किया | यही कारण है कि हमारे साथ एक कारवाँ जुडता गया |

हाल ही में जयपुर स्थित अंतरराष्ट्रीय साहित्य सम्मलेन में साहित्यकार आशीष नंदी ने पिछड़ी जाती के खिलाफ भ्रष्टाचार के दोषी होने का बयान देने के बाद माफ़ी माँगी | अंग्रेजी लेखक सुहेल शेठ मंच पर ही नशे में धुत दिखाई दिये | 'बाबू जी धीरे चलो' की धुन पर अभिनेत्री याना गुप्ता का डांस और ग्लेमर का साहित्य से क्या संबंध ? हमारे जवानों के सर काटनेवाले पाकिस्तान के साहित्यकारों की उपस्थिति क्यों ? इस घटना ने साहित्य को दागदार किया है| सस्ती लोकप्रियता पाने की चाह में कथित बुद्धिजीविओं की असलियत को बेनकाब कर दिया | साहित्य समाज से संवाद करने का माध्यम हैं | प्रत्येक शब्द का उपयोग करने से पहले सोचना चाहिए | आज के दौर में साहित्य को राजनीति का अखाड़ा बनाने में कहीं हम तो जिम्मेदार नहीं हैं ,ये सोचने का वक्त आ गया है |

'नव्या' को एक वर्ष में अनगिनत साहित्यकारों-पाठकों से स्नेह-आशीर्वाद मिले | यह अकारण नहीं | हमने पूरी सजगता और तटस्थता के साथ रचना-रचनाकारों के साथ समाज के प्रति अपना उत्तरादायित्त्व निभाने के भरसक प्रयास किये हैं | जो 'नव्या' को इस मुकाम तक ले आऐ| ई-पत्रिका से मुद्रित पत्रिका की इस यात्रा में हमारे साहित्यकारों ने अपनी मौलिक अभिव्यक्ति के द्वारा इसे अन्य सम्मानित पत्रिकाओं की पंक्ति में हमें ला खड़ा किया है | यह बहुत रोमांचक और ज़िम्मेदाराना अनुभूति है | शुरू में मज़ाक के पात्र बनाने के बाद आज उन्हीं साहित्यकारों के हाथों में नव्या पल रही हैं | हमारे साथियों ने अथक मेहनत करने में मेरा हौंसला बढ़ाया | शुरू में डॉ. स्वाति नलावडे और शीला डोंगरे ने एक सपने को सच बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी |परामर्शक डॉ. सिद्धेश्वर सिंह और डॉ. सुधा ओम ढींगरा ने फोन पर हमेशा 'नव्या' की चिंता की, अपनी अमूल्य सलाह और स्नेह से इसे सींचने का कार्य किया | सहसंपादक **श्रीमती शीला डोंगरे**, मित्र **श्री सौरभ पाण्डेय** और **श्रीमती अर्चना चतुर्वेदी** ने भी हमसे कंधा मिलाकर सहयोग दिया है | 'नव्या' के मुखपृष्ठ को सजाने के लिये दिल्ली के होनहार चित्रकार **श्री विजेन्द्र वीज** ने परीवार के सदस्य बनकर ही अमूल्य सहयोग दिया हैं| यह एक सुखद पल हैं, यह यज्ञ कार्य है जो हर किसीको अपने सृजन- संस्कार को उजागर करने का अवसर देता हैं |

सपने देखना प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है मगर उसी सपने को हकीकत में बदलना कठिन जरूर है, असंभव नहीं | मैं इसी सोच पर आगे बढता रहा हूँ और परिणाम आपके हाथों में है | सदस्यता लेकर 'नव्या' को सुरक्षित करने में भी लोग आगे बढने लगे हैं | आर्थिक स्थिरता किसी भी पत्रिका के लिये अनिवार्य है | मुझे आशा हैं कि जिनके हाथों में 'नव्या' होगी वो सदस्यता लेने का गौरव प्राप्त करने को उतावले होंगे | हमने पहले तीनों अंको के लोकार्पण कार्यक्रम दिल्ली, इलाहाबाद और नागपुर में किये | अब इस अंक का लोकार्पण भी अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला-दिल्ली में हो रहा है | पाठकों से हमें सुझाव भी मिलते रहेंगे और स्तरीय संवाद भी रचा जाएगा | अंत में यही कहूँगा कि 'नव्या' हम सब की पत्रिका है और प्रांतीय मर्यादाओं की संकुचित सोच से निकलकर हमें वैश्विक सोच के साथ आगे बढ़ना है | पहले वर्ष में हमने परचम लहराया है तो आप ही की बदौलत | आगे भी एक नए सपने को लेकर चलें और पुरुषार्थ करते हुए कंधे से कंधा मिलते हुए सुरक्षित, संस्कारी और संवेदनापूर्ण समाज की रचना करें | अस्तु |

ॐ

पाठकों की कलम...

पंकज जी,
नव्या का नवम्बर -जनवरी अँक मिला। स्तरीय रचनाओ को देख कर मन खुश हो गया। हिन्दी में काफी पत्रिकाएँ निकल रही है लेकिन 'नव्या' अलग ही छाप छोडती है। गज़ल,कहानी कविता उम्दा है। पुस्तक समीक्षा भी छापेँ। पत्रिका निश्चय ही स्तरीय पत्रिकाओ मे शुमार की जायेगी। शुभकामनाएँ.

- संतोष श्रीवास्तव - मुम्बई

*

प्रिय पंकज जी,
नमस्कार ! नवंबर-जनवरी अंक मिला, धन्यवाद। 'नव्या' का प्रिंट संस्करण बहुत चुस्त-दुरूस्त निकल रहा है। किसी भी साहित्यिक पत्रिका को सफल बनाने में जो तत्व सहायक सिद्ध होते हैं, वह 'नव्या' में मौजूद है। आप इसे जिस साज-सज्जा और जितनी समृद्ध सामग्री के साथ निकाल रहे हैं वो काबिले तारीफ है। कविता, गीत, नवगीत, गजल, दोहा आदि स्तरीय हैं। कहानियां और आलेख पठनीय हैं। 'नव्या' के रूप में नए लेखकों को एक अच्छा मंच मिला है। आपकी मेहनत हर जगह नजर आती है। मेरी शुभकामना है कि 'नव्या' बिना अवरोध के निरंतर प्रकाशित होती रहे और दिन ब दिन इसमें निखार आता रहे। हिंदी जगत को अहिंदी भाषी क्षेत्र से निकल रही ऐसी पत्रिकाओं की आवश्यकता है। आपका,

- हिमकर श्याम

संपादक महोदय,
आज मुझे डाक द्वारा नव्या पत्रिका का अंक प्राप्त हुआ ! पत्रिका पढ़कर मन बहुत हर्षित हुआ ! फेसबुक के मित्रों की सुंदर रचनायें ई नव्या पर तो पढ़ते ही थे, किन्तु प्रिंट रूप में पढ़कर ख़ुशी कई गुना बढ़ गयी! नव्या को दिन ब दिन कामयाबी हासिल हो और वह राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित होकर खूब नाम कमाए, इसी मनोकामना व शुभकामनाओ के साथ नव्या को चार पंक्तियाँ समर्पित करती हूँ.....

"नव्या सभी नवोदितों की शान हो तुम!
हर रचनाकार का गौरव गान हो तुम!
अनवरत सफलता की उड़ान भरो तुम,
घर घर में सबकी मांग बनो तुम !"

- सुनीता शर्मा

आज मुझे 'नव्या' का अंक मिला. I liked very much. सभी कुछ balanced -well managed था.congratulations Pankaj ji...

- इंदु बाली दत्ता देहरादून

*

नमस्ते. आज मुझे 'नव्या' का तीसरा अंक मिला, बड़ी खुशी हुई. हम आज Rs. 1500/-AAJIVAN के लिये बैंक से ट्रांसफर कर रहे हैं. भगवान के आशीर्वाद, आपकी वफादारीपूर्वक की मेहनत जरुर रंग लायेगी. पेपर, छपाई, और सीनियर सिटीज़न भी पढ़ सकें ऐसे टाईप | आपकी नव्या ई-पत्रिका तो हमेशा पढती हूँ मगर कहीं आते-जाते कार में भी नव्या का अंक पढ़ पाऊँगी. पुन: एकबार आशीर्वाद.. दिल से... **- डॉ. ललिता पलेप** मुम्बई

*

"नव्या" नव्य नव्या।
मेरे सामने "नव्या" पत्रिका पड़ी है। साहित्य के क्षेत्र में नयी आभा के साथ। वाद और खांचे से पृथक। शुद्ध रूप से अभिव्यक्ति का सम्मान। न साहित्य की जागीरदारी न अंकड़। विनम्रता में स्वत्व का दस्तावेज। इसमें हैं समीर श्रीवास्तव, डॉ. कविता वाचक्नवी, डॉ. नमन दत्त, सहादत हसन मंटो, डॉ. वन्दना मुकेश, डॉ. रमा शंकर शुक्ल, नवीनचंद्र सी चतुर्वेदी, मनोहर चमोली, रंजीत, शीला डोंगरे, एहतराम इस्लाम, आबिद अली मंसूरी, निलेश शेगांवकर, अजय कुमार पांडे, मुमताज नाजा, डॉ. भावना तिवारी, सुमन कपूर, सुबोध श्रीवास्तव, ईरा टाक, मधु गुप्ता, डॉ. दिविक रमेश, विमला भंडारी, अभिषेक कुमार झा अभि, डॉ. नूतन गैरोला, सुमीता केशवा, संतोष श्रीवास्तव, गुंजन, सौरभ पाण्डेय, पूनम सिंह, रेणु गुप्ता, विश्वगाथा। इस महान काम को संभव कर पाए पंकज त्रिवेदी और शीला डोंगरे। दोनों जन हिंदी साहित्य के चितेरे। कोई विवाद नहीं, पर सच के साथ। त्रैमासिक पत्रिका भी निकालना आसान नहीं। पत्रिकाओं की चौधराहट से इतर "नव्या" ने मन को बहुत सुकून दिया। नव्या तुम हमेशा नव्य रहो। त्रिवेदी जी और डोंगरेजी को अनंत शुभकामनाएं। **-डॉ. रमा शंकर शुक्ल (मिरज़ापुर –उ.प्र.)**

ता.०५-०१-२०१३

बंधुवर पंकजभाई त्रिवेदी (प्रबंध सम्पादक)
सुश्री शीला डोंगरे, (सम्पादक)
'नव्या'पत्रिका
email : nawya.magazine@gmail.com

नमस्कार ।

आप के प्रेमादरपूर्ण उपहार स्वरुप 'नव्या' का नवम्बर-जनवरी-२०१३ का अंक मिला । आनंद एवं आभार ।

गुजरात के हिन्दी पत्रिका जगत में 'नव्या' का प्रवेश एक महत्वपूर्ण घटना है । अंक में समाविष्ट सामग्री-वैविध्य एवं उत्कृष्ट मुद्रण को देखते हुए प्रतीति नहीं होती कि यह 'नवजात' पत्रिका है । गद्य एवं पद्य सामग्री में नावीन्य की खुशबू है । समाचार एवं विचार की दृष्टिसे 'नव्या' सशक्त है । मुझे पूरा विश्वास है कि 'नव्या' अल्पसमय में ही साहित्य जगत में अपना सम्मान्य स्थान की अधिकारिणी होगी । मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ एवं अभिनंदन ।

स्नेहसिक्त

(डॉ.चन्द्रकान्त मेहता)
पूर्व उपकुलपति, गुजरात विश्वविद्यालय
उपाध्यक्ष हिन्दी साहित्य परिषद, अहमदाबाद
मो.९८२४०१५३८६

पाठकों की कलम...

मान्यवर पंकज भाई जान, आत्मीय आदान क़ुबूल कीजिए |

मैं जब जब हिन्दी पढ़ता हूँ निराला याद आता है
जो बिखराता था भाषा का उजाला याद आता है

डॉ. कविता वाचक्नवी साहेबा का निराला जी पर बहुत अच्छा लेख है. एहतराम इस्लाम साहब की गज़लों में यारी है |

खून पसीना एक करके हम सजाते है इसे
हम अगर कह दें कि ये दुनिया हमारी हैं तो हैं

इनसे नए गज़लकारों को सीखना चाहिए | डॉ. भावना तिवारी का नवगीत प्यारा है | इरा टाक ने अपनी मासूम कविता से बचपन की मीठी यादें ताज़ा कर दी हैं| सुमन कपूर का लयबद्ध गीत मुकम्मिल है | आबिद अली मंसूरी की गज़ल इस्लाह (दुरस्त) के काबिल है |किसी उस्ताद शायर को दिखाएँ बिना प्रकाशित करवाना शायरी की दुनिया में संगीन जुर्म है| मधु गुप्ता की कविता ' आसमां के पास' इन्हें एक कामयाब कवयित्री दर्शा रही है | निलेश शेगांवकर की गज़ल भी काबिल -ए-इस्लाह है | डॉ. दिविक रमेश जी की कविता मजबूत है | विमला भंडारी की आधुनिक कविता प्यारी लगी है| डॉ. नूतन गैरोला और सुमीता केशवा की कविताएँ कमाल की हैं| अजय कुमार पाण्डेय की कविता ' बढ़ चुकी समस्या' बहुत अच्छी है, इसे गज़ल की तरह लिखा है, मगर सारे के सारे अशआर गज़ल की लय से आज़ाद हैं | शीला डोंगरे साहिबा लघु व्यंग्य के माध्यम से उभरी है| संतोष श्रीवास्तव की कविता 'अधूरी ख्वाहिश' एक तरह की लज़्ज़त रखती है| मुमताज़ नाजां की शानदार गज़ल का यह शेर -

रगों में भर गया है ज़हर तो आखिर मिला क्यूं हो
हमीं ने नाग अपनी आस्तीनों में तो पाले हैं

बड़ी कडवी सच्चाई बयाँ कर रहा है | मुबारक बादें | मनोहर चमोली साहब ने रंगमंच के तअल्लुक से ठीक सुझाया है फकत तालियाँ पीटने से कुछ भी हासिल नहीं होता न होगा| पूनम सिंह और रेणु गुप्ता ' रैना' की कविताएँ कम शब्दों में बहुत बड़ी कविताएँ हैं | ' नव्या' की लिखाई, छपाई, कागज़ सभी खूबसूरती प्रस्तुत कर रही है | बस ज़रा काव्य के प्रति ध्यान रखना होगा | इस पत्रिका का दुनिया के सभी देशों में स्वागत हो ऐसी शुभकामनाओं के साथ.. - **आरिफ़ जमाली**

सचिव, हिन्दी-उर्दू परिषद, पो. कामटी-441001
नागपुर (महाराष्ट्र) मो. 08698749022

❊

प्रिय पंकज जी,

' नव्या' का प्रथम अंक गुरुवर रवीन्द्रनाथ टैगोर विशेषांक था| मेरे सदभाग्य से गुजरात में हमारे शहर में उसे लोकार्पित करने का श्रेय आपने ही मुझे दिया था, वो मैं कैसे भूल सकता हूँ? आप गुजरात से और श्रीमती शीला डोंगरे जी नासिक से है| अहिन्दी क्षेत्र से आप दोनों ने इस चुनौती को स्वीकार किया है, तो मुझे लगता है कि आगे भी आपको देश के विभिन्न क्षेत्रों से अप्रतिम सहयोग मिलेगा | ' नव्या' का तृतीय अंक (नवम्बर-जनवरी-२०१३) काफ़ी वैविध्यपूर्ण रहा | पत्रिका में क्रमश: स्तरीय सामग्री परोसी जा रही है. खासतौर से मुखपृष्ठ पर चित्रकार की कृति एवं अंतिम पन्ने पर उसी चित्रकार की कैफियत /परिचय देकर एक सराहनीय प्रयास संपादकीय मंडल की तरफ से हुआ है| नई पीढ़ी को उजागर करने का भी सार्थक प्रयास है. आपने तो शुरू में ई-पत्रिका और फिर मुद्रित पत्रिका करके अपने साहित्यिक उत्तरदायित्व को खूब निभाया है | वैसे आपके पूरे परिवार ने साहित्य की विरासत को आगे बढाने में भरपूर योगदान दिया है | अबतक वो गुजराती साहित्य तक सीमित था, जो आपने हिन्दी साहित्य में भी एक नई दिशा में कदम उठाएं हैं. |हमारे लिये यह एक गौरव की बात है |

- प्रा. रामचरण हर्षाना

4/ A, विवेकानंद सोसायटी, न्यू रेलवे स्टेशन के पास,
सुरेंद्रनगर –363001 गुजरात मो. 09825990059

******

आदरणीय श्री पंकज त्रिवेदी जी एवं सुश्री शीला डोंगरे,

अत्र कुशलं तत्रास्तु ! आपके कुशल संपादन में प्रकाशित तथा प्रो. अर्चना जैन (पुत्री) के नाम और मेरे पते पर प्रेषित त्रैमासिक पत्रिका ' नव्या' का तीसरा अंक यथासमय मिला | गुर्जर धरा - सुरेंद्रनगर से प्रकाशित मुद्रित पत्रिका ' नव्या' की वैविध्यपूर्ण विपुल सामग्री देखकर /पढकर मुझे सचमुच सुखद विस्मय हुआ |

हिन्दी पत्रिकाओं की भीड़ में निश्चय ही स्वतंत्र अभिव्यक्ति का सम्मान करने वाली पत्रिका ' नव्या' ने अपनी नई पहचान बनाई है | आवरण रंग आकर्षक है, मुद्रण निर्दोष है, कविताएँ-गीत-गज़लें दिलचस्प हैं और कहानियाँ समकालीन बोध से अनुप्राणित हैं |

उत्कृष्ट सामग्री का चयन आपके गुणग्राहक संपादकत्व का प्रतीक है | यकीनन आपकी यह पत्रिका निकट भविष्य में बुलंदी के नए कीर्तिमान स्थापित करेगी | आपके इस साहस को हमारा बाअदब सलाम ! शुभमस्तु !

- प्रो. भगवानदास जैन (पूर्व अध्यापक)

B-105, मंगलतीर्थ पार्क, कैनाल के पास, जशोदानगर रोड़,
मणिनगर (पूर्व) , अहमदाबाद-382445

❊

पंकज जी,

नमस्कार ,

" लेखक हो तो स्वपन सजा दो कागज पर"

एहतराम इस्लाम जी की उपरोक्त पंक्तियाँ कहीं दिल को छू गई। नवम्बर-जनवरी अंक मेरे सम्मुख है । आकर्षक आवरण व नूतन वर्षाभिनंदन से प्रारंभ होकर, निराला व सहादत हसन मंटो को छूता हुआ जब वर्तमान के धरातल पर आया तो जनाब एहतराम जी कि उपरोक्त पंक्तियाँ पढ़ी । विचारनीय है कि लेखक का दायित्व क्या है ? वर्तमान दौर में क्या लिखा जा रहा है, क्या पढ़ा जा रहा है और क्या यह दोनों अपने राष्ट्रीय सरोकारों से दूर होते जा रहे हैं ?

पाठकों की कलम...

लिखना है तो रामायण का सार लिखो
बढ़ता जाता अत्याचार,उपचार लिखो।
लिखना है तो मानवता की बात लिखो,
किया गया उपकार तुम साभार लिखो ।

किसी भी पत्रिका का कार्य होता है कि लेखक ,पाठक तथा सम्पूर्ण समाज के बीच कड़ी बने, समाज को दिशा प्रदान करे। "नव्या" का आधार गुजरात से प्रारंभ होता है, वह गुजरात जो सदा से अपनी सभ्यता, संस्कृति एवं राष्ट्र प्रेम के लिए जाना जाता है। गुजरात जो हर विषम परिस्थिति में भी आगे ही बढ़ता रहता है, जिसके निवासियों ने विश्व में अपना परचम फरहाया है। तब नव्या के संपादक का दायित्व भी बढ़ जाता है। सम्पादकीय किसी भी पत्रिका का चिंतन होता है, भविष्य का प्रश्न होता है, वर्तमान का दर्पण और भूतकाल का अनुभव होता है। सम्पादकीय का लिखा जाना मात्र औपचारिकता नहीं होता है। अत: मेरा विनम्र अनुरोध है कि आगामी अंको में सम्पादकीय को राष्ट्र, धर्म, संस्कृति या किसी चिंतन पर केन्द्रित करें ताकि देश को नई दिशा मिल सके।

विकास की दौड़ में हमने धरती, गगन और जल सबका विनाश करने का ठेका खुद ही ले लिया है। डॉ. श्रीराम परिहार ने समस्या पर सार्थक चिंतन प्रस्तुत किया है, ऐसे आलेख समाज की दिशा तय करने में सहायक होते हैं । अगर आप भारत को जानना चाहते हैं तो भारतीय रेल की जनता गाडी में साधारण डिब्बे में बैठो, और इसी बात को रंजित जी ने यात्रा वृतांत के माध्यम से बखूबी उकेरा है। कहानियाँ प्रभाव छोड़ती हैं, कविता खंड के तो क्या कहने। अजय कुमार पाण्डेय की ग़ज़ल "बढ़ चुकी समस्या बहुत, विचार होना चाहिए" मुझे सकारात्मक पहल की ग़ज़ल लगी। व्यंग में शीला जी ने आम आदमी की पीड़ा को सहजता से छुआ है । रुसी कविताओं का अनुवाद करने के लिए सुरेश चौधरी जी साधुवाद के पात्र हैं। जब तक हम अन्य भाषा भाषियों का चिंतन नहीं पढेंगे तब तक उन्हें समझना मुश्किल होता है, बहुत ही सकारात्मक प्रयास।

चौपाई-छंद के में नवीन कुमार सी चतुर्वेदी जी द्वारा दी गई जानकारी बहुत महत्वपूर्ण है, अगर थोडा भी प्रयास किया जाए तो बड़ी सफलता मिल सकती है। संक्षेप में कहूँ तो नव्या में संग्रहित सामग्री अच्छी है। स्थान की उपयोगिता में विश्वंभर जी व पूनम को समायोजित करना अच्छा लगा। फिर भी कहना चाहूँगा कि अभी सुधार की जरुरत है।

आवरण पृष्ठ 2-3 का सदुपयोग भी होना चाहिए। सार्थक प्रयासों के लिए साधुवाद। संवाद की प्रतीक्षा में...

- डॉ. अ. कीर्तिवर्धन (मो. 8265821800)

❊

माननीय पंकज त्रिवेदी साहब,

सादर ! शब्द और रंग इन दो पाखों के बीच प्रवाहमान भावधारा सी, इंसानियत का संवाद रचनेवाली ' नव्या' को पढकर मन प्रसन्न हुआ| नवम्बर-जनवरी-2013 का अंक मेरे सम्मुख हैं|

अमूर्त को मूर्तिमान करने का भावुक प्रयास है - ' साहित्य| चित्रकृतियाँ, रंगों की अंतरिक्ष का अविष्कार करती हैं| बड़े ही अर्थवान हैं, अमित कल्ला की कूची के प्रतिबिम्ब | सिद्धहस्त हैं ये सु-रंग रेखांकन और शब्दों के ध्वनांकन में |

कविता वाचक्नवी और श्रीराम परिहार के इतिवृत्त पढने की उत्सुकता जमाते हैं | सौरभ पाण्डेय के ' शक्ति : छ : रूप' अच्छे लगे | अजयकुमार पाण्डेय (मलाज़खंड) की विप्लवी भीतिका भी | खुशी होगी अगर वे इलाके के निसर्ग पर कुछ कहें| सुश्री शीला डोंगरे का व्यंग्य उस भावभूमि पर प्रतिष्ठित है जो सभी को अपनी सी लगती हैं|

काव्य-खंड को ज्यादा तरजीह दी गई है | सहज अपनत्व के तहत लिख रही हूँ | हार्दिक धन्यवाद / आभार इसलिए कि शब्दों की फसल उगाने वाले दौर में आप एक अहिन्दी भाषी प्रदेश गुजरात से हिन्दी पत्रिका निकालकर हकीकत की ज़मीं पर संभावनाओं के फूल उगा रहे हैं |

पुनाश्चा अगणित शुभकामनाएँ | नव वर्ष 2013 के लिए | बहुत संभव है, मुझे आपका पत्र मिले और ' नव्या' के माध्यम से संवाद की श्रृंखला का शुभारंभ हों ! **- इंदिरा किसलय**

बल्लालेश्वर, रेणुका विहार, रामेश्वरी रिंग रोड़,
नागपुर– 440027 (महाराष्ट्र)

❊

सम्माननीय पंकज त्रिवेदी जी,

'नव्या' को देखकर प्रसन्नता से मन भर गया | अहिन्दी क्षेत्र से हिन्दी पत्रिका निकलना अपने आप में न केवल चुनौती है बल्कि एक साहित्य प्रीति और साधना ही हैं |

मैं भी चाहूँगा कि मेरी रचनाएँ इस पत्रिका के पृष्ठ पर अंकित हों | शुभकामनाएँ | **- आचार्य रामदत्त मिश्र**

सी-84, शास्त्री निवास, गली नं. 3, (थाने के सामने) ,
भजनपुरा, दिल्ली– 53

प्रभात बुक सेंटर (शोरूम)

(हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशक तथा वितरक)

बी-2/104, शीतल पैलेस, शीतल नगर,

मीरा रोड़ (पूर्व), मुम्बई-401 107

मो. 98928 15391, 9892836009

एक गुमनाम लेखक की डायरी

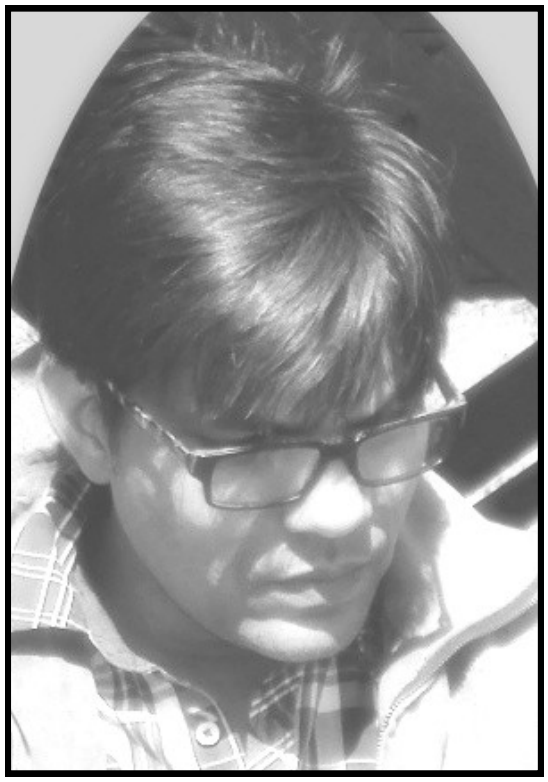

20.08.2012,बृहस्पतिवार

अजब दिन थे वे। अजब देश।

खेत-बधार और गली-गांव से अधिक की पहुंच नहीं थी हमारी। कभी-कभी छुपकर दोस्तों के साथ नदी चले जाते थे। वह भी क्यों, इसलिए कि जोशोप को बहुत सारे गीत याद थे। वह घास गढ़ता था और अपने दोस्तों के साथ भैंस चराता था। हीरालाल भी बहुत अच्छे गीत गाता था। उनके साथ हम बच्चों की टोलियां गाते-बजाते नदी की ओर भैंस धोने के लिए जाते। मैं नदी के किनारे खड़ा रहता। सारे बच्चे अपने अपने कपड़े उतार कर नदी में उतर जाते। एक दिन मैं नदी में उतरा और मेरे सारे कपड़े गीले हो गए। फिर भीगे हुए कपड़े पहने ही मैं कई घंटे बाहर ही घूमता रहा ताकि कपड़े सूख जाएं तो घर जाऊं। गीले कपडों के कारण नदी जाने की बात घर वालों को पता चल जाती और मेरा अपने दोस्तों के साथ चल रही करामातों पर पाबंदी लग जाती। कपड़े सूख गए लेकिन सिर पर पानी ने अपने निशान छोड़ रक्खे थे। मां को पता चला तो उसने बहुत डांट लगाई। लेकिन नदी जाना नहीं रूका।

एक बार मैं नदी में डूबने लगा। अंतिम बार लगा कि अब मैं मर जाऊंगा, अब फिर मेरी वापसी नहीं होगी। लेकिन मेरी एक ताकत मेरी जिद भी है। जिद में आकर मैंने अंतिम प्रयास किया और तैरता हुआ किसी तरह किनारे तक पहुंचा। उसदिन लगा कि मैं तैर सकता हूं, लेकिन गहराई में जाने में आज भी मुझे डर लगता है।

वह नदी अब सूख-सी गई है। वहां लोग अब नहाने नहीं जाते। औरतें अपने कपड़े फींचने नहीं जाती। बालकिशन मल्लाह अब नाव से नदी पार कराने के एवज में अनाज मांगने नहीं आता | अब नदी उदास-उदास दिखती है। हमारे जवान होने तक वह अब बूढ़ी हो चुकी है। नदी मर रही है और हम सिर्फ उसे देख भर रहे हैं। वह धर्मावती नदी जब नहीं रहेगी तो मैं अपने बच्चों से कहूंगा कि यहां एक नदी बहा करती थी और हमारे उस कहने की पीड़ा को शायद उस समय मेरे बच्चे नहीं समझेंगे।

गंगा जी दूर थीं जिसे हमारे बाबा भागड़ कहते थे। गंगा नदी हमें छोड़कर चली गई थीं और अब भागड़ रह गया था। गंगा जी के भाग जाने के कारण शायद उसका नाम भागड़ पड़ा था। हमारे बार(बाल) वहीं उतरे थे। नदी को मापने के लिए बांध की रस्सी पकड़ कर हम गंगा के उस पार पहली बार गए थे । हम और मेरे बड़े भाई। मल्लाह से कहकर हमने गंगा के बीच में झिझिली खेली थी। बहनों ने गीत गाया था - मल्हवा रे तनिए सा झिझिली खेलाउ - । .. पूरी नौका गांव की औरतों से भरी हुई थी और पानी के बीच में गीत गूंज रहा था। वह गीत आज भी कभी-कभी मेरे कानों में गूंजता है | आज जब उस गंगा के किनारे से गुजरता हूं तो अनायास ही मेरे हाथ प्रणाम की मुद्रा में उठ आते हैं। मैं खुद को अब तक रोक नहीं पाया। रोकने की कोशिश भी नहीं की।

वह गंगा नहीं थी। गंगा का पानी सिर्फ बाढ़ के समय सावन-भादो में आता था। लेकिन पूरे साल हमारे लिए वही गंगा नदी थी। हमारी सारी रस्में वहीं होती थीं। मुर्दे फूंके जाते थे। तीज-जिऊतिया में औरते उसी के किनारे गीत गाते हुए -नहाते हुए अपने व्रत-उपवास पूरा करती थीं। उसी के किनारे कथा का आयोजन होता था। कई बार चईता-बिरहा और दुगोला का भी आयोजन होता।

वह गंगा नहीं थी लेकिन लोग उसे गंगा की तरह ही पूजते-आंछते थे। वह भागड़ भी अब सूखने के कगार पर है और हम उसे सूखते मिटते हुए देख रहे हैं | मैं हर बार मन ही मन उस गंगिया माई को प्रणाम करता हूं। उसने हमें पानी दिया। हमें तैरना सिखाया। हमसे बेघर होकर भी कैसे रहा जाता है, वह सिखाया। यहां हुगली को रोज पार करता हूं, लेकिन वह श्रद्धा वह हूक मेरे मन में नहीं उठती जो उस सूख रही गंगा के लिए उठती है।

कविता कहीं नहीं थी। बस यही सब था जो जमा पूंजी था। आज भी कथा-कहानी के नाम पर वही सब है जिसे मैं हर रोज घर में या घर से निकलने के बाद जतन से बटोरता चलता हूं..।

24 अगस्त, 2012, शुक्रवार

कल किसन कालजयी से मिला। वहीं हितेन्द्र पटेल और आशुतोष जी भी थे। किसन कालजयी ने मेरी कविता की किताब प्रकाशित की है। हम पहली बार मिल रहे हैं- किसन जी ने कहा। अच्छा, आप मिले नहीं कभी और आपने विमलेश जी कि किताब छाप दी। यानि हिन्दी साहित्य में यह भी होता है, यह बात हमें आश्वस्त करती है - आशुतोष जी की आंखों में विस्मय था!उन्हें कॉफी हाउस जाना था लेकिन मैं नहीं गया, संकोचवश । अतुल जी से मिलना भी था और जल्दी घर लौटना था। कॉलेज स्ट्रीट से लौटने में मुझे डेढ़ घंटे लगने थे। मैं महात्मा गांधी रोड के फुटपाथ से लौट रहा था। सामने एक सीडी बेचने वाला दिखा। मैंने कुछ सोचते हुए उससे पूछा - रवीन्द्रनाथ के

गीत हैं हिन्दी में? वह समझा नहीं - उसने फिर पूछा - किसका? मैंने फिर वही दुहराया - रवीन्द्रनाथ टैगोर के गीत। क्या कहा आपने रवीना टंडन के गीत? - वह बोला। मैं बहुत उदास हो गया और बिना कुछ जवाब दिए फुट-पाथ पर आगे बढ़ गया।

मैं कोलकाता में था और सोच रहा था कि जिस तरह रवीन्द्र को यहां के लोग पूजते हैं, उससे तो, उस आदमी को रवीन्द्रनाथ का नाम मालूम होना चाहिए था। लेकिन उसे शायद नहीं मालूम था। इस देश की बिडंबना क्या रही। बांग्ला में फिर भी रवीन्द्र को लगभग सबलोग जानते हैं, लेकिन क्या हिन्दी भाषा में निराला और प्रसाद को लोग उसी तरह जानते हैं ? क्या कभी यह हो पाएगा इस देश में कि हम साहित्य को भी जीवन की जरूरी चीजों का हिस्सा बनाएंगे।

हिन्दी भाषा के संदर्भ में कहूं तो मुझे बार-बार लगता है कि हिन्दी साहित्य का जिस तरह विकास हुआ, उसी अनुपात में हिन्दी पट्टी के लोगों में साक्षरता और उससे भी अधिक साहित्यिक साक्षरता का विकास नहीं हुआ। इसके बहुत सारे कारण हो सकते है, गुरूओं ने गिनाए हों, मुझे इसकी जानकारी नहीं है।

लेकिन यह जरूरी था कि साहित्य के विकास के साथ आम आदमी की शिक्षा और उसके मानसिक सोच में विकासात्मक परिवर्तन होता, लेकिन यह न हो सका और आज भी यह हो नहीं सका है। साहित्यकार आज भी हिन्दी पट्टी के समाज में एक अजूबा चीज है। कवि जी है। हिन्दी पट्टी में व्यंग्यात्मक लहजे में कहा जाता है कि कविजी आ रहे हैं।

नहीं तो क्या कारण है कि बचपन से ही मेरे मन में ये बात बैठी हुई थी कि और कुछ भी बनना है, लेकिन कवि नहीं बनना है। अगर ऐसा हुआ तो मेरा नाम भूलकर लोग मुझे भी कविजी कहना शुरू कर देंगें। और यह कविजी कहने के बाद दांत निपोर कर ऐसे हंसेंगे जैसे कह रहे हों कि साले तुम निकम्मे हो, इसलिए कवि बने फिरते हो।

यही कुछ कारण रहे होंगे जब होश आया तो मैंने उपन्यास अधिक पढ़े और पहली बार जब लिखना शुरू किया तो उपन्यास ही लिखना शुरू किया। यह अलग बात है कि वह उपन्यास गुलशन नंदा और वेद प्रकाश शर्मा और सरला रानू के उपन्यासों के प्रभाव का नतीजा था। जिस डायरी में वह उपन्यास लिखा जा रहा था, और जिसके आठ अध्याय पूरे हो चुके थे, वह कहीं खो गई है।

कविता बहुत अच्छी हो सकती है यह मुझे सीमा विजय की अवृति ने बहुत जमाने बाद कॉलेज के दिनों में सिखाया। उसने अवतार सिंह पाश की एक कविता की अवृति की थी और मैं अंदर तक झनझना गया था। वह मेरे कॉलेज का पहला दिन था। एक और कविता की आवृति वह करती थी - कभी मत करो माफ। यह कविता सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की थी।

इन दो कविताओं की आवृति ने फिर से मुझे झंकझोर कर कविता की दुनिया में वापसी की। बाद में तो इससे ऐसे जुड़ा कि अब चाहकर भी निकलना संभव नहीं है। मेरे अंदर जब तक एक आदमी जिंदा है जो रोते हुए अपने गांव से इस महानगर में आया था, तब तक मुझे विश्वास है कि मेरे अंदर की कविता नहीं मरेगी। इसकी परवाह मुझे नहीं है कि लोग मुझे कवि समझेंगे या मेरे लिखे को कविता समझा जाएगा कभी। लेकिन एक विवशता जो मेरे साथ हो ली है। उससे दूर होना अब लगभग नामुमकिन लगता है।

एक मित्र की बात याद आती है - वह जमाना गया कि लोग कवियों कलाकारों को अमर बनाते थे, अब अमरता वाला मुहावरा खो गया है, इसलिए जो कवि खुद को अमर करने के लिए लिखता है, वह चूतिया (वेबकूफ)है।

आज उसकी वह बात याद आ रही है - बेतरह और याद आ रहे हैं रवीन्द्र, निराला और साथ में उस दुकानदार की बात - रवीना टंडन...।

मेरा कहने को एक घर है और इतनी सारी जिम्मेवारियां और एक बड़ी जिम्मेवारी इस मिट्टी के लिए भी है, जिसकी धूल मेरे शरीर में आज भी धसी हुई है।

मैं कवि-कलाकार बनने के लिए कभी लिखूं भी तो कैसे। यह चाहत मेरे भीतर आए भी तो कैसे...?

मैं तो अपनी मिट्टी का कर्ज चुकाने के लिए लिखता हूं। मेरे बड़े भाई तो इलाज के अभाव में मर गए और उनका तो छोटा मोटा इलाज भी हुआ लेकिन उनके बारे में जब सोचता हूं जिनके घर कई-कई शाम चूल्हे नहीं जलते, इलाज की बात तो दूर, तो अपने कवि होने पर शर्म आती है।

एक कविता तो ऐसा लिखूं जिसमें शब्द न हों, कला न हो, लय और तमाम कविता के लिए जरूरी चीजें न हों, लेकिन वह कविता मेरे गांव के सबसे गरीब परिवार के घर चूल्हे में आग की तरह जले, तसली में चावल की तरह डभके... एक बच्चे के चेहरे पर हंसी की तरह खिल-खिल आए। और एक भूखी आंत में पहुंच कर रक्त के रूप में तब्दील हो जाए।

उसके पहले अगर मुझे कोई कवि मानता हैं तो मानता रहे, मुझे अपने लिखने पर तब भी अफसोस ही रहेगा....।

❁

संपर्क: साहा इंस्टिट्यूट ऑफ न्युक्लियर फिजिक्स,
1/ए.एफ., विधान नगर, कोलकाता-64.
Email: bimleshm2001@yahoo.com
Mobile: 09748800649

❁

दहशतगर्दों के होश भी उड़ जायेंगे तब
युवाओं की ताकत भी मिल जायेगी जब

- पंकज त्रिवेदी

कहानी : किरण राजपुरोहित 'नितीला'

मशीन

गाड़ी में बैठ कर दीपांकर ने पास बैठी ममता को एक नजर देखा। उदास ममता सूनी आँखों से दूर कहीं देख रही थी शून्य में। दीपांकर का मन हुआ उसको अपने सीने में भींच ले लेकिन वह जानता है ऐसे में वह फफक पड़ेगी। कुछ पल यूँ ही देखता रहा। हौले से उसके कंधे को थपथपा दिया। गर्दन घुमा उसने दीपांकर को डबडबायी आँखों से देखा जिनमें कई प्रश्न आतुरता से जवाब के लिये तैर रहे थे।

"कोशिश करेगे डॉक्टर " यही कह पाया। वह खुद नहीं समझ पाया कि उन शब्दों में क्या है सूचना, सान्त्वना या आशा? लेकिन ममता जानती है कि ये केवल सूचना है | उसके जीवन में शनैः शनैः प्रवेश करते अंधकार के और निकट आने की । गाड़ी अपनी गति से चली जा रही थी। निस्तब्धता ने अपना अधिकार जमाये रखा। क्या बात करे? अब बातों के सिरे भी न जाने कहाँ छूटते जा रहे थे। ढूँढने पर भी कोई सहज सी बात का सिरा नहीं मिलता । घंटों खतम न होने वाली बातें न जाने इन सालों में कैसे चुक सी गई है । लेकिन ममता ये सब नहीं सोचती । उसके पास सोचने को बहुत कुछ है बल्कि अब लग रहा है कि सोचना ही शेष है करना तो जैसे अब खतम ही हेा जायेगा। अगले कुछ सालों में उसके पास शायद ऐसा कुछ भी नहीं रहेगा जिसके लिये वह कुछ करे| पहले भी पचासों बार इस स्थिति से गुजरी है वह। घर से निकलते वक्त हर बार ही ईश्वर से प्रार्थना करती है हे ! ईश्वर आज कुछ मनचाही सूचना मिल जाये। वह यही सोचती कि मनचाहा बस कुछ ही दूरी पर है जो मिल ही जायेगा। ममत्व की उमंग को वह थोड़ा दबाये रखती। बस कुछ ही दिनों की बात है फिर तो वह भी आँचल के फूल के साथ झूमेगी। सासू माँ भी सैकड़ों आशीर्वाद देती अपनी सुलक्षणी बहू के । फूलो फलो, सुखी रहो,भगवान मुझे जल्दी ही पोते-पातियों की किलकारी सुनाये !

धीरे धीरे डाक्टरों के चक्कर की संख्या बढ़ने लगी,ईश्वर से मिन्नतों का समय बढ़ने लगा लेकिन आशा की किरण धुंधली होने लगी, आशीर्वादों का कवच भी छोटा होने लगा ।डाक्टर से वार्तालाप की एक-एक बात ममता सासू माँ को बताती वे सुनती भी । अस्पताल जाने और आने के बीच वह देहरी पर ही खड़ी रहती। ऐसी सास पाकर वह स्वयं को धन्य समझती। लेकिन बधाई सुनने को लालायित

उनके कान धीरे -धीरे अड़ोस-पड़ोस और रिश्तेदारों की पूछा-ताछी सुनते, पहले पहल तो उदास रहने लगी और धीरे -धीरे अपनी भड़ास निकालने के लिये कटु वचनों का सहारा लेने लगी।

जो मिलता बस एक ही सवाल उससे करता, `खुशखबरी कब सुना रही हो ? शुरु-शुरु में अच्छा लगता वह शरमा जाती लेकिन बाद में वह इस सवाल से बचने लगी, कुढ़ने लगी | उँह!और कोई बात नही जिसको देखो यही बात, यही सवाल। दुनिया में इससे आगे कुछ नहीं है क्या ? और भीतो रास्ते है दुनिया में,काम है जिनके बारे में पूछा जासकता है। सच में तो अब स्वयं कोभी यह बात सालने लगी थी बस खुद को दिलासा देने के लिये खोखले तर्क करती। तब ममता ये नहीं जानती थी कि जिंदगी केसफर में यहाँ आने के बाद एक परिवर्तन होता है जिसे पार करने के बाद नई दुनिया में पदार्पण होता है और फिर जीवन उसी केन्द्र के सहारे गुजरता है अन्यथा रिश्ते, दाम्पत्य और जिदंगी भी अंधेरी गलियों में गुम हो जाती है। ऐसे में सहारा था तो केवल दीपांकर का। पति के अगाध प्रेम में लिपटी वह बिछ

जाती। अपना दिल आँसुओं के पन्ने पर खोल कर रख देती ।

उदास ममता को दीपांकर की सुदृढ़ बाँहों का ही नहीं शब्दों का भी सहारा मिलता। अरे! क्या हुआ बच्चा नही तो? हम दोनों तो है, हमारा प्रेमहै।

कहाँ जरुरत है किसी और की । मुझे बच्चा -वच्चा कुछ नहीं चाहिये बस तुम खुश रहो, उदास मत रहा करो । पति के प्रेम में कुछ -कुछ अपनी पीड़ा भूल जाती । उसे बहुत तसल्ली मिलती कि दीपांकर को बहुत अधिक कामना नहीं है बच्चे की।

इन्हीं ऊँचे-नीचे रास्तों पर समय अपने साथ सबको चलाता रहा। विवाह को आठ वर्ष व्यतीत हो गये । घर में हरदम तनाव व्याप्त रहता। खुशखबरी पूछने वाले रिश्तेदार अब अजीब सी दया भरी निगाहों से देखते। गाहे-वगाहे सांत्वना देते तो अपमान से भर उठती लेकिन क्या करे? एक बात का उसे फिरभी संतोष था कि दीपांकर इस सम्बंध में अधिक कुछ नहीं कहते।

एक दिन कुछ सामान खरीदने बाजार गये। ममता दुकान के अंदर गई और दीपांकर बाहर इंतजार में खड़े रहे। सामान के बारे में कुछ राय जानने के लिये ममता ने दुकान से बाहर झाँक कर उसका ध्यान अपनी ओर करना चाहा लेकिन तीन-चार आवाजें देने के बाद भी नही सुना तो बाहर आकर

देखा और वहीं जड़ हो गई। पास की दुकान में छोटा बच्चा किसी खिलौने के लिये जिद कर रहा था और माँ लगातार समझाये जा रही थी। एकटक यह दृश्य देखते दीपांकर के चेहरे पर आसुँओं की धार थी। अंदर तक काँप गई वह। न जाने उसके मन में कौनसी मजबूत डोर चटक कर टूट गई थी। उसके सामने भविष्य के तरह-तरहके रंग तैर गये । दीवार न थामती तो शायद गिर ही पड़ती । चौंक कर दीपांकर ने देखा और झटसे आँखें पोंछी `अरे! क्या हुआ तुम्हें?

तबियत तो ठीक है।' एकाएक चेहरे के भाव बदल कर सहज होते हुये कहा जैसे कुछ हुआ ही न हो। घिसटती सी ममता बमुश्किल गाड़ी में बैठ पाई।

समय, खुशियाँ,भविष्य और....और....भी न जाने क्या-क्या बालू रेत की तरह उसके हाथों से छूटता जाते लग रहा है।वह निरपराध सी चुपचाप देखती जा रही है। लेकिन इसमें क्या गलत हुआ? वह भी तो कितने ही वर्षों से दिखने वाले हर बच्चे को कैसी सी नजरों से निहारती है। ठिठक कर उसकी भोली हरकतो में खो सी जाती हैं | कई बार तो उसे बैठे हुये यही लगता कि जैसे उसका प्रतिरुप पास ही लेटा है और वह हाथ बढ़ा कर उठाने के लिये मचल पड़ती लेकिन.....

समूचे वातावरण में बोझिलता ,उदासी महसूस होती ही थी लेकिन आजकल न जाने क्यूँ सबके व्यवहार में एक बू सी आने लगी है ममता को । कई दिन गुजरते-गुजरते उस बू का कड़वा सच पकड़ आ गया।

"ओह! मेरे भगवान नही .....ऐसा नहीं .....दीपांकर...."

और पछाड़ कर गिर पड़ी ममता । कई दिन सूनी-सूनी आँखें लिये ही बैठी रही। पति की दूसरी शादी की बात सुन कर ही जैसे शून्य में पहुँच गई। ऐसा शून्य जहाँ केवल अंधकार ही अंधकार छाया हो और कोई सांत्वना का प्रकाश भी सिर पीट कर मिट जाये । दीपांकर के उदासीन व्यवहार ने तो जैसे तस्वीर का दूसरा रुख दिख दिया। मन में हजारों सवाल उमड़ते लेकिन उनका जवाब किससे माँगे? मन में ही टूट-टूट कर वे सवाल अंधेरे को और घना कर देते । वो चीख-चीख कर एक-एक को झिंझोड़ कर पूछना चाहती अरे! उसके अकेले का ही क्या दोष है,फिर उसे ही सजा क्यूँ सुना दी गई है झट से? घर की हर स्त्री से पूछना चाहती कि तुम भी तो औरत हो तुम भी मेरा मन नहीं पढ़ सकती कि मुझे भी तो बच्चे की कितनी चाह है। दीपांकर के वंश का भला सोच कर नई मशीन की भांति, शादी कर दूसरी स्त्री लायी जायेगी जो सबकी इच्छा पूरी करेगी लेकिन मेरा भला किसमें है?

ये किसी ने सोचा? एक काम ना आने वाली वस्तु समझ कर मुझे फेंक दिया जायेगा । और नई लाई जायेगी । भावना रहित मशीन ही तो समझा जा रहा है दोनों को | इससे अधिक क्या स्थान है? भावना रहित मशीन ही तो समझा जा रहा है दोनों को | इससे अधिक क्या स्थान है? आने वाली स्त्री को भी संतान पैदा करने के लिये लाया जायेगा उसके मन को भी कोई नहीं समझेगा? उस अदेखी के प्रति सहानुभूति सी उमड़ आई। बेचारी ! फिसल पड़ा ममता के मुहँ से, केवल माध्यम बनाने के लिये ही शादी का, प्रेम का स्वाँग रचा जाता है? 'सुनो...' कई दिनों तक अजनबियों की तरह साथ रहे-रहते, घर वालों के बर्ताव ने उसे झिंझोड़कर रख दिया था। दीपांकर नामक विश्वास जिसकी छाँव तले अपने आपको सुरक्षित, सौभाग्यशाली पाती थी। ऐसा लगता था जैसे जीवन में कोई भी झंझवात आये, सहन कर लेगी बस दीपांकर का प्रेम न छूटे। उस वट वृक्ष के सहारे वह हर मुश्किल, अभाव सहन कर गुजरेगी लेकिन पहले ही तूफान ने वट वृक्ष का खोखलापन दर्पण की तरह सामने ला पटका । उस सच्चाई ने कोमल लता की जडें ही खोद दी थी ।

घर के विषैले वातावरण ने ही जैसे उस लता को नये सिरे से सींचना शुरु कर दिया। इन दिनों में ममता ने खुद में एक नई मजबूती महसूस की जो खुद को थाम सके। अब तक हरदम वह पति के ,उसके परिवार के इर्द-गिर्द सिमटी ,सकुचायी ,भयभीत सी सोच लिये रहती लेकिन इस तूफान ने तो जैसे उसके वजूद पर जमी धूल झाड़ कर उसके असली अस्तित्व को निखारने की ठान ही ली है। इस परीक्षा के इस तरफ केवल समझौता,उसकी निरीहता और अपमान के कड़वे घूँट है लेकिन उस पार जैसे उसका आत्मअभिमानी वजूद उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। इसीलिये एक दिन जैसे उसके भीतर का वजूद ही बोल पड़ा "सुनो...." अलमारी में से कपड़े निकालते दीपांकर को कई दिनों बाद पुकारा ममता ने । आवाज की मजबूती सुन चौंक कर पलटा वह । कई दिनों से दिन भर रोती रहने वाली का यह स्वर सुन कर तकने लगा जैसे यह उसकी पत्नी नहीं कोई और है। "क्या हम बच्चा गोद नहीं ले सकते" अपने पति के दिल में अपने लिये आखिरी बार जगह ढूँढने की कोशिश की । सपाट सी बात सुन उसने नजरें झुका ली । कुछ जवाब देते न बना।

अपनी सकपकाहट छुपाने के लिये अलमारी में फिर उपक्रम करने लगा। कंधे पर हाथ के स्पर्श से पलटा "आपने जवाब नहीं दिया.....क्या ऐसा नहीं हो सकता? एक बच्चे की चाह मुझे भी उतनी ही है जितनी आपको..... हो सकता है ईश्वर हमें एक गुमनाम बच्चे का जीवन सँवारने का मौका देना चाहता है। अपनी संतानों को तो सब पालते हैं । हम भी शायद इस मुश्किल में न होते तो ऐसा ही करते लेकिन ईश्वर ने हम दोनों के लिये ये रास्ता छोड़ा है जिस पर हम अब भी साथ चल सकते हैं " कह कर जवाब के लिये उन आँखों मैं झाँका | दिल थाम कर इंतजार करने लगी क्योंकि उसका भविष्य इस जवाब से पूरी तरह जुड़ा हुआ है नही तो.....। लेकिन उन आँखों ने इधर-उधर देख कर असमर्थता जाहिर की।

अपनी सकपकाहट छुपाने के लिये अलमारी में फिर उपक्रम करने लगा। कंधे पर हाथ के स्पर्श से पलटा "आपने जवाब नहीं दिया.....क्या ऐसा नहीं हो सकता? एक बच्चे की चाह मुझे भी उतनी ही है, जितनी आपको..... हो सकता है ईश्वर हमें एक गुमनाम बच्चे का जीवन सँवारने का मौका देना चाहता है। अपनी संतानों को तो सब पालते हैं । हम भी शायद इस मुश्किल में न होते तो ऐसा ही करते लेकिन ईश्वर ने हम दोनों के लिये ये रास्ता छोड़ा है जिस पर हम अब भी साथ चल सकते हैं "कह करजवाब के लिये उन आँखों में झाँका | दिल थाम कर इंतजार करने लगी क्योंकि उसका भविष्यइस जवाब से पूरी तरह जुड़ा हुआ है नही तो....। लेकिन उन आँखों ने इधर-उधर देखकर असमर्थता जाहिर की। "दीपांकर..... भगवान के लिये मुझे समझने की कोशिश करो।

तुम ही ऐसे क्या करने लगे। इतने-सारे वादे, इतना प्यार क्या सब भूल गये? मेरे होने का वजूद क्या उस के सामने कुछ भी नहीं जो अभी तक कहीं भी नहीं है। जो है ही नहीं उसके लिये तुम मेरे प्यार, मेरे विश्वास ,मेरे सम्मान को ठोकर मार दोगे।....." मुँह बाये वह सुनता रहा। उसे लगा जैसे ममता के भीतर भावों का अगाध समुद्र उमड़ आया। एक नया प्राणी तुम्हें सौंप दूं तो मैं तुम्हारे लिये कुछ हूँ,नहीं तो अपनी जिदंगी से मुझे फेंक दोगे बेजान ठूँठ की तरह । मेरा प्रेम....में.... कुछ भी नहीं....." कहते कहते गला रुँध गया। चारों ओर से निरुपाय सी वह फफक कर रो पड़ी। बुत बना वह बैठा रहा। एक सांत्वना भरे ,स्नेह ,विश्वास के स्पर्श की आस लिये बस बैठी ही रह गई । न कुछ बोला ,न कुछ पूछा करवट बदल कर लेट गया। जैसे कह दीवार के सहारे सिर टिका दिया उसने जैसे स्वयं को परिस्थितियों की धारा में बहने को छोड़ दिया हो । दीपांकर की पीठ देखती रही चुपचाप। अब दीपांकर पति नहीं पुरूष नजर आ रहा है। वही सनातन पुरुष! इसी पुरुष के साथ जीवन की नई शुरुआत कर अपने भाग्य पर इठलाई थी । न जाने कितने वादे किये थे,सपने देखे थे। लेकिन उन छलते सपनों का अंत हो चुका है अब.....।

सवेरे उठा तो वह किसी सफर के लिये तैयार जान पड़ी । कहां जायेगी पति को छोड़ कर और जा भी कहाँ सकती है? उस ने सोचा और फिर मुस्कुरा दिया। चेहरे पर उज्ज्वल आभा दमक रही थी। एकाएक ही प्यार उमड़ आया और माथा चूम लिया उसका। न चाहते हुये भी ममता की आँखों में नमी उभर आई। शायद ये आखिरी.....सोचा ममता ने।

''बहुत सुंदर लग रही हो।''

''अच्छा एक बात तो बताओ ..'' सीने से लगी ही बोली।''

जिसने तुम्हे यह रास्ता दिखाया उससे मुझे कुछ पूछना है।''

''माँ से सवाल करोगी तुम.....'' एकदम उसे झटक कर अनायास कह गया । फीकी सी व्यग्ंयनुमा हँसी उभर आई ममता के होठों पर । फिर खुल कर हँसी और बुदबुदायी....

''माँ..ममतामयी माँ....घर सँवारने वाली माँ.....वही....

औरत की दुश्मन औरत ...हमेशा की तरह.'' हतप्रभ खड़ा रह गया वह। ममता ने एक बार फिर अटैची खोली और उसमें पड़े अपने बी. एड. के प्रमाण-पत्र और उस अखबार की कतरन फिर संभाली 'सात दिनों की बच्ची के माँ-पिता की दुर्घटना में मृत्यु। परिवार में दूर-दूर तक कोई नहीं। ममतामयी दंपति संपर्क करें..... | नहीं, ममतामयी माँ !! वाक्य पूरा किया ममता ने। मजबूत हाथों से अटैची थामी। मूर्तिवत् खड़े दीपांकर को झिंझोड़ा और फीकी सी हंसी हंसते हुये बोली ''अब मेरा चेहरा तकने को नहीं मिलेगा। जाते-जाते एक बात मन में आ रही है, श्रीमान् दीपांकर गुप्ता! कि आने वाली स्त्री जिसे तुम नई मशीन बनाकर लाओगे वो भी तुम्हारी इच्छा पूरी नही कर पाई तो और कितनी स्त्रियों की भावनाओं से खेलोगे?

❊

Kiran Nitila C/o. Bakhtawar Sing Ji Rajpurohit
C-139 Shastri Nagar, Jodhpur -342003 (Raj)

कविता :☐ नील सिंह

परिकल्पना

चाहत से अंजान हैं वो मेरी
गीत ग़ज़ल कविता में मेरी
उनका ही नाम आता हैं
पढ़ती हैं वह जब रचना मेरी
वाह वाह कर खूब दाद दे जाती हैं

चेहरा मेरा शर्म से लाल हुआ जाता हैं
कौन हैं वह खुशनसीब, पूछकर चली जाती हैं

उसकी आँखों में जाने क्या कशिश हैं
दिल में प्यार का अहसास कराती हैं
जब भी होता हैं उससे सामना मेरा
वह नज़रे झुकाकर चली जाती हैं

उसकी बातों में मेरा जीकर होता हैं
तन्हाई में नाम मेरा गुनगुनाती हैं
मेरे खयालो में खोई - खोई रहती है
प्यार का इज़हार करने से कतराती हैं

मीठी हैं बोली उसकी जैसे मिश्री की डली
बातो से मुझे अपना बना जाती हैं

शर्म हया लाज़ उसके गहने हैं
भीड़ में भी शालीन नज़र आती हैं
सहृदयता पहचान हैं उसकी
यही अदा मुझे उसका दीवाना बना जाती हैं

❊

जीतेन्द्र सिंह कृष्णावत (नील)
39 ओल्ड सुभाष नगर, शिव मंदिर के पीछे,
इंदौर (म.प्र.) 452003
mob. No. 09575609574

रूकी रूकी सी साँसे चलने लगी है अब
तुम्हारे नाम के ही जादू को जाना अब
- पंकज त्रिवेदी

व्यंग्य :☐ शुभ्रांशु पाण्डेय

हिंदी और मच्छर

बदलते मौसम की शाम का आनन्द लेने हमसभी पार्क में बैठे थे | हम सभी का मतलब लालाभाई, मैं और एक नये सदस्य भास्करन | तभी भास्करन का मोबाइल किंकियाया | अब उस तरह की आवाज के लिए और क्या शब्द दिया जा सकता है | मोबाइल पर तमिल में काफ़ी देर तक बात चलती रही | यों पल्ले तो कुछ भी नहीं पड़ रहा था लेकिन हमसभी उनके चेहरे के मात्र हावभाव से ही सही, उनकी बातों को पकड़ने की कोशिश करते रहे थे | कुछ देर के बाद जब उनकी बात खत्म हो गयी तो मैंने अपनी झल्लाहट को स्वर देते हुये ठोंक दिया, "यार तमिल सुनने में क्या लगता है, मानों कोई कनस्तर(टिन का डिब्बा) में कंकड़ डाल के जोर-जोर से हिला रहा है| सभी एक साथ ठठा कर हँस पड़े | मगर यह साफ़ लगा कि भास्करन को यह तनिक नहीं सुहाया था, लेकिन वे ठहरे विशुद्ध स्मार्ट सज्जन, मेरी तरफ उन्होंने एक तिरछी मुस्कान फ़ेंक दी | मगर समझ में नहीं आया कि ये भाव उनकी खिसियाहट के थे या वो आने वाले युद्ध की चेतावनी दे रहे थे | कुछ देर तक तो अपने विदेशी बेटे की उपलब्धियों को बखानते रहे फिर अचानक से अपनी बातों का हैण्डिल भाषा और इसके अंदाज की ओर मोड दिया, "हिन्दी भी तो गरेड़ियों की भाषा है..!"

उनके इस कथन पर हमसभी एक साथ चौंक पड़े ! ये तो एकदम से तथ्यहीन आरोप है| अलबत्ता अंग्रेजी के बारे में ये बातें जरूर कही जाती हैं कि शुरू में ब्रिटेन में राजशाही तथा कुलीन वर्ग की भाषा भी अंग्रेजी नहीं थी, फ्रेंच थी | अंग्रेजी तब निम्न वर्ग या गरेड़ियों और मजदूरों की भाषा हुआ करती थी| लेकिन हिन्दी पर ऐसा कोई आरोप हमसभी की समझ से एकदम परे था| अपने कथ्य को विस्तार देते हुये भास्करन ने अपनी मुस्कान की कुटिलता को कुछ और धारदार किया, "आप जानवरों या गाय-भैंसों को कैसे भगाते हैं? ..हः.. हाः.. होः.. हुर्रर्र... ऐसे ही न ? अपनी बातचीत को सुनिये तो लगभग हर पंक्ति का अंत क्या होता है? .. है, हैं, हो, हूँ, .. अब ये बताइये कि हिन्दी न जानने वाले लोगों को क्या लगेगा, मानों जानवर भगा रहे हैं| तो क्या ये नहीं हो गयी गरेड़ियों-चरवाहों की भाषा ?"

सच कहूँ तो हिन्दी भाषाभाषी होने के बावज़ूद मैं हिन्दी भाषा की इस दशा से बिलकुल अनजान था | हिन्दी के प्रति इस कोण से सोचने का अवसर ही नहीं मिला था | अपने कहे का इस तरह बुमरैंग हो कर वापस आना मुझे बिल्कुल नागवार गुजरा था | बात अब नाक की हो गयी थी | हिन्दी की नहीं भाई, अपनी नाक की !लगा इन भास्करन महोदय से भला कैसे हार जाऊँ ? फिर भी अपने आप को थोड़ा संयत किया और हिन्दी के सबसे भरोसेमन्द रूप को पकड़ा, "देखो भाई, हिन्दी में जो लिखा जाता है वही पढा भी जाता है | यहाँ दूसरी भाषाओं की तरह नहीं है कि शब्दों के उच्चारण में पढ़ने वाले को अपने शब्द-भण्डार और अपनी समझ पर निर्भर रहना पड़ता हो | आप लोगों के यहाँ तो अक्षर ऐसे हैं कि तमिल में 'कथा पे खाना खाने आना है' लिखा है तो उसे 'गधा बेगाना गाने आना है' पढ़ा जा सकता है | हिन्दी के कवर्ग, चवर्ग या पवर्ग या किसी वर्ग आदि का मतलब ही नहीं है| तमिल भाई लोग अपने नाम के इनिशियल तक अंग्रेजी वर्णमाला के अक्षर से करते हैं, क्योंकि तमिल में वैसे अक्षरों के उच्चारण ही नहीं होते.. "

इस बहसबाजी में, में कुछ ज्यादा ही पर्सनल होता जा रहा था | लालाभाई ने माहौल को समझा जो अभी तक एक श्रोता की तरह आनन्द ले रहे थे | इस बोझिल हो रहे माहौल को हल्का करने के लिये हँसते हुये कहा, "भाई, अंग्रेजी में वर्ण ज्यादा हो कर ही क्या हुआ ? जब उन्हें लिखने के बाद भी नहीं पढा जाता ! कम से कम हिन्दी में तो लोप या साइलेंट का बखेड़ा नहीं है | अंग्रेजी के इस लोपकरण ने तो परीक्षाओं में कितने ही विद्यार्थीयों के नम्बर ही लोप करा दिये हैं | बोलने के मामले में तो अंग्रेजी और भी अज़ीब है | एक ही अक्षर के अलग-अलग उच्चारण होते हैं | अब देखिये, डोर और पुअर का भयंकर अंतर ! डू और गो का चुटकुला तो अब नये बच्चों के लिये भी पुराना हो चुका है |' अब लालाभाई के इस कहे पर सभी लगे हें हें हें करने| तभी तिवारी जी अपनी साँसों और दुहरे हुए बदन को संभालते हुए आते दिखायी दिये | वे शाम की एक्सरसाइज का कोटा पूरा कर के आ रहे थे |

पसीना पोंछते हुए धम्म से आ कर बीच में बैठ गये और सामने के जूस-कार्नर से सभी के लिये अनारशेक लाने का आर्डर दे दिया | भाई, वो तिवारीजी ठहरे | हमसभी ने कुछ शिष्टाचारवश और ज्यादा शेक के लिये मुख पर चौड़ी मुस्कान चिपका ली | शेक पीने के बाद महौल थोड़ा ठंडा हुआ दिखा | लेकिन भास्करन तो जैसे अपनी सारी खुन्नस आज ही निकालने के मूड में तने बैठे थे |

यहाँ तक कि अनारशेक का ठंडा ग्लास भी उन्हें सुकून नहीं दे सका था | बात को आगे बढाने लगे| लग गया कि अगले बमगोले के साथ तैयार हैं | उन्होंने कहा, "हिन्दी में जो लिखा जाता है, वो ही पढा जाता है,लेकिन वैसा ही किया भी किया जाता है क्या?"

तिवारीजी तुरंत ही प्रवचन के मूड में आ गये | आजकल जब से एक से एक घोटालों का पर्दाफ़ाश होने लगा है, वो टीवी पर से नये-नये लोप हुए एक बाबाजी का समागम ज्यादा करते फिर रहे हैं |तुरंत ही उन्होंने भास्करन की बातों का जैसे समर्थन किया,"एकदम ठीक कहा आपने अन्ना भाई, कोई अपने खुद का कहा नहीं करता.

अब तो बेईमानी, मिथ्यावचन.. भ्रष्ट-आचरण जैसे अपने समाज का स्वभाव होता जा रहा है | नैतिकता का तो पूरी तरह जैसे नाश ही हो चुका है.."तिवारीजी ने मानों कोई रटा-रटाया जुमला टेप की तरह बजा दिया गया था.

भास्करन ने तिवारीजी को टोकते हुये कहा, "मैंने इतनी हाई-फाई बात नहीं की है भाई... मेरे कहने का बस इतना-सा मतलब है कि क्या हिन्दी के लिखे वाक्यों की क्रिया को आप सही में पूरा करते हैं ?"

सभी ने एक दूसरे की आँखो में देखा और हमने अपने-अपने सिर स्वीकारोक्ति में एकसाथ हिला दिये. भास्करन ने छूटते ही कहा,".. तो फिर बैठे हुए चलके दिखाइये... "

इस पर तो सभी फिरसे एक दूसरे का चेहरा देखने लगे | लेकिन इस बार सभी के भाव अलग-अलग थे. लालाभाई ने सीधा मतलब ही पूछ लिया,"अमा, ये क्या जुगाली कर रहे हो भाई?"

भास्करन ने खुलासा किया,"आप लोग हिन्दी में किसी से कहते हैं न... 'बैठ जाओ', 'सो जाओ', और तो और 'आ जाओ'.. अब ये बताइये कि अगर कोइ बैठ गया तो मतलब ये हुआ कि उसकी क्रिया की गति समाप्त हो गयी है | फ़िर भी अगर उसे चलना कहा जाय तो वो क्या चलेगा ? बल्कि इस तरह की किसी क्रिया को फुदकना ही कहेंगे. .. अब देखिये, आप किसी बच्चे से कहते हैं 'आजा'. अब बताइये कि वो आपके किस आदेश का पालन करे ? वो आयेगा या जायेगा ? अगर उस बेचारे ने ऐसा कुछ करना चाहा भी तो एक ही जगह पर ही आगे-पीछे डोलता रहेगा | आ.. जा.. आ.. जा.. या, 'सो जा' कहने पर एक सामान्य व्यक्ति के लिये ऐसा करना संभव ही नहीं है | अगर कोई ऐसा कुछ करता भी है तो वो ये एक बीमारी है | इस विषय पर फिल्में भी बन चुकी हैं. .."

हम सभी के सभी उनकी बातों पर निरूत्तर हुए जा रहे थे | इधर भास्करन तो जैसे हमारी बेदम हुई बल्लेबाजी को देख कर... आज योर्कर पर योर्कर मारे जा रहे थे | इसी में आगे उन्होंने अगला जुमला दे मारा, "भाई, हिन्दी में तो निर्जीव वस्तुओं का भी लिंग-निर्धारण कर दिया जाता है. .. एक कटोरी तो दूसरा कटोरा ! या वो भी नियत नहीं.. एक कटोरी कब किसी के लिये कटोरा हो जाये कुछ नहीं कहा जा सकता | एक बच्चे के लिये जो कटोरा होगा वो ही किसी भद्र जन के लिये कटोरी होगी...!"

लालाभाई ने तो इस पर बेजोड़ मजा लिया, "... बलियाटी लोग तो हाथी का भी पुल्लिंग किये बैठे हैं....हाथा... हा हा हा...."

भास्करन की बात भले बेढब सी लग रही थी, लेकिन हम सभी के सभी निरुत्तर हो चुके थे | आँखो ही आँखो में हार मान चुके थे| हमारी सोच और हमारे विचार-मंथन के साथ शाम भी लगातार गहरी होती जा रही थी | मैंने अपने सिर के ऊपर एक-दो बार हाथ झटक कर कहा, "चलिये भाई घर चलते हैं बहुत मच्छर काट रहे हैं. .."

लेकिन सच्चाई तो यही थी कि भास्करन के कटाक्ष मच्छरों से भी ज्यादा जोर से डंक मार रहे थे | सही भी है, हर भाषा की अपनी विशेष सुन्दरता और अलग गरिमा होती है | जिसकी अपनी परिपाटी हुआ करती है | कोई भी हो, इस मामले में अपनी नाक ज्यादा ऊँची क्या रखनी.. .?

एडवोकेट, इलाहाबाद हाईकोर्ट , इलाहाबाद
Contact (M) : +91 99190 57501
(R) : +91 532 2696379

नज़्म : नीलम नागपाल मैदीरत्ता

ज़िंदगी

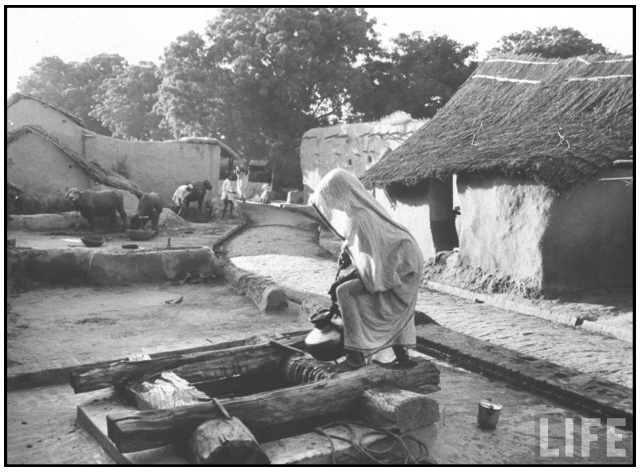

ज़िन्दगी तुम आसां होती तो हम बार-बार जीते,
तुम इस कदर मुश्किल कि हम एक बार भी जी ना पाए

ज़िन्दगी तुम रंग ना बदलती तो हम श्वेत-श्याम जीते,
रंग बदले इस कदर तुम ने कि हम कोई रंग चढ़ा ना पाए

ज़िन्दगी तुम ख्वाब ना दिखाती तो हम बेख्वाब ही जीते,
ख्वाब दिखाए इस कदर तुम ने कि ख्वाब पूरे हो ना पाए

ज़िन्दगी तुम बेवफा होती तो हम दर्द के साथ जीते,
तेरी वफ़ा इस कदर गहरी कि हम साँस भी ले ना पाए

ज़िन्दगी तुम वक़्त ना देती तो हम बिन मलाल ही जीते,
वक़्त दिया इस कदर तुम ने कि काटे कट ना पाए

❁

ये उपकारी हरे वृक्ष
यह नयी लता
खुलती कोंपल
खुलने पर, खिलने पर, पकने पर
झुक जायेंगी स्वयं धरा पर
फिर से उगने को कल
नये रूप में |

- शकुन्त माथुर

अभ्यास : शालिनी पाण्डेय

हिन्दी-अनुसंधान की नयी चुनौतियों में 'हिन्दी के यात्रा-वृत्तान्त : प्रकृति एवं प्रदेय'

हिन्दी के परम्परागत अनुसंधान-विषयों जैसे- निबन्ध, उपन्यास, कहानी, नाटक, जीवनी आदि पर अबतक अनेकशः अनुसंधान हो चुके हैं और हो रहे हैं, किन्तु हिन्दी गद्य की अन्य विधाओं यथा सूचना प्रौद्योगिकी, यात्रा-वृत्त, रिपोर्ताज, आत्मकथा, डायरी लेखन आदि पर बहुत कम अनुसंधान-ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इन पर भी शोध की परम् आवश्यकता है।

हिन्दी में यात्रा-वृत्त यद्यपि बहुतायत से प्राप्त हैं किन्तु इस विधा पर हुए शोधों में यू0जी0 सी0 द्वारा अन्तर्जाल पर प्रकाशित सूची के अनुसार 1949 से 2004 तक मात्र एक शोध प्रबन्ध प्राप्त हो सका है तथा इस विधा पर उपलब्ध पुस्तकों की संख्या भी नगण्य ही है। उपलब्ध हो पा रही पुस्तकों में विश्वमोहन तिवारी की पुस्तक 'हिन्दी का यात्रा साहित्य: एक विहंगम दृष्टि', रेखा परवीन उप्रेती की 'हिन्दी का यात्रा साहित्य (1950-1990 तक)', मुरारी लाल की 'हिन्दी यात्रा साहित्य: स्वरूप और विकास', प्रतापपाल शर्मा की 'हिन्दी का आधुनिक यात्रा साहित्य' और डॉ0 अनिल कुमार का 'स्वातन्त्र्योत्तर यात्रा साहित्य का विश्लेषणत्मक अध्ययन' आदि ही प्रमुख हैं।

मनुष्य का चाहे बचपना हो अथवा युवावस्था उसकी प्रवृत्ति सदैव से ही घुमक्कड़ी रही है। वह अपने बाल्यकाल से लेकर प्रौढ़ावस्था तक कहीं न कहीं भ्रमण करने की चेष्टा किया करता है। इस भ्रमण में जो भी पात्र और विचार सम्पर्क में आते हैं वह उसके मानस-पटल पर अंकित हो जाते हैं। जब वह अपने मानस-पटल पर अंकित विचारों को लिपिबद्ध करता है तब वहीं से यात्रा-साहित्य का जन्म होता है। लेखक जब यात्रा साहित्य का सृजन करता है तब उसके मूल में उसका प्रकृति के प्रति प्रेम और उसके दार्शनिक विचार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

' ' यात्रा शब्द की व्युत्पत्ति 'या' धातु (जाना) से हुई है, उसमें ष्ट्रन प्रत्यय लगाकर यात्रा स्त्रीलिंग शब्द बना है।''[1] यात्रा का अर्थ होता है एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना। किसी यात्रा का जीवन्त विवरण और लेखक की उससे जुड़ी संवेदनायें मिलकर यात्रा साहित्य का निर्माण करती हैं। लेखक को यात्रा-वृत्त का वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए कि उसका चित्र पाठक के समक्ष पूर्णरूपेण उभर जाये। यही कारण है कि यात्रा-वृत्त लिखने वाला, इतिहासकार से अधिक चित्रकार होता है। डॉ0 रामचन्द्र तिवारी के शब्दों में- ``यात्रा-वृत्तान्तों में देश-विदेश के प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता, नर-नारियों के विविध जीवन सन्दर्भ, प्राचीन एवं नवीन सौन्दर्य चेतना की प्रतीक कलावृत्तियों की भव्यता तथा मानवीय सभ्यता के विकास के द्योतक अनेक वस्तु-चित्र, यायावर लेखक-मानस में रूपायित होकर वैयक्तिक रागात्मक ऊष्मा से दीप्त हो जाते हैं। लेखक अपनी बिम्बविधायिनी कल्पना शक्ति से उन्हें पुनः मूर्त करके पाठकों की जिज्ञासा-वृत्ति को तुष्ट कर देता है।''[2]

'' प्रथमतः उपलब्ध हिन्दी (ब्रजभाषा) यात्राग्रन्थ विक्रम सम्वत् 1600 (1542-43 ई0) के गुसाईं विट्ठल जी की हस्तलिपि में बनयात्रा तथा दूसरा विक्रम सम्वत् 1609 (1551-52 ई0) की जीमन जी की मां की हस्तलिखित बनयात्रा का आज भी उपलब्ध होना एक मधुर आश्चर्य है।''[3]

डॉ0 रामचन्द्र तिवारी ने यात्रा साहित्य का प्रारम्भ भारतेन्दु से माना है। तिवारी जी के शब्दों में `हिन्दी साहित्य में यात्रा-वृत्तान्त `लिखने की परम्परा का सूत्रपात भारतेन्दु से माना जा सकता है। भारतेन्दु ने 'सरयू पार की यात्रा', 'मेंहदावल की यात्रा' और 'लखनऊ की यात्रा' आदि शीर्षकों से इन वृत्तान्तों का बड़ा रोचक और सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है।''[4] भारतेन्दु के बाद यात्रा साहित्य की एक अखण्ड परम्परा देखने को मिलती है। इन यात्रा-वृत्तों में हिन्दी प्रदेश में निवास करने वाले विशाल मानव-समुदाय के मानसिक क्षितिज की सूचना मिलती है। इन रचनाओं में पं0 दामोदर कृत 'मेरी पूर्व दिग्यात्रा', देवी प्रसाद खत्री कृत 'रामेश्वर यात्रा' और 'बदरिकाश्रम यात्रा', शिव प्रसाद गुप्त कृत 'पृथ्वी प्रदक्षिणा' और पं0 राम नारायण मिश्र कृत 'यूरोप यात्रा में छः मास' आदि विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, रामबृक्ष बेनीपुरी, यशपाल, अज्ञेय, ''प्रथमतः उपलब्ध हिन्दी (ब्रजभाषा) यात्राग्रन्थ विक्रम सम्वत् 1600 (1542-43 ई0) के गुसाईं विट्ठल जी की हस्तलिपि में बनयात्रा तथा दूसरा विक्रम सम्वत् 1609 (1551-52 ई0) की जीमन जी की मां की हस्तलिखित वनयात्रा का आज भी उपलब्ध होना एक मधुर आश्चर्य है।''[3]

डॉ0 रामचन्द्र तिवारी ने यात्रा साहित्य का प्रारम्भ भारतेन्दु से माना है। तिवारी जी के शब्दों में ''हिन्दी साहित्य में यात्रा-वृत्तान्त लिखने की परम्परा का सूत्रपात भारतेन्दु से

की यात्रा' आदि शीर्षकों से इन वृत्तान्तों का बड़ा रोचक और सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है।"[4] भारतेन्दु के बाद यात्रा साहित्य की एक अखण्ड परम्परा देखने को मिलती है। इन यात्रा-वृत्तों में हिन्दी प्रदेश में निवास करने वाले विशाल मानव-समुदाय के मानसिक क्षितिज की सूचना मिलती है। इन रचनाओं में पं0 दामोदर कृत 'मेरी पूर्व दिग्यात्रा', देवी प्रसाद खत्री कृत 'रामेश्वर यात्रा' और 'बदरिकाश्रम यात्रा', शिव प्रसाद गुप्त कृत 'पृथ्वी प्रदक्षिणा' और पं0 राम नारायण मिश्र कृत 'यूरोप यात्रा में छः मास' आदि विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

गवतशरण उपाध्याय, रामधारी सिंह 'दिनकर', नागार्जुन, प्रभाकर माचवे, राजा बल्लभ ओझा आदि अनेक यात्रा प्रेमी तथा जन्मजात सैलानी प्रवृति के यायावर सामने आए। इन्हीं के द्वारा हिन्दी के यात्रा-साहित्य की श्री वृद्धि हुई। महत्त्व के यात्रा-वृत्तों में राहुल सांकृत्यायन कृत 'मेरी तिब्बत यात्रा', 'मेरी लद्दाख यात्रा', 'किन्नर देश में' और 'रूस में पच्चीस मास'; रामबृक्ष बेनीपुरी कृत 'पैरों में पंख बांधकर' और 'उड़ते चलो-उड़ते चलो'; यशपाल कृत 'लोहे की दीवार के दोनों ओर'; अज्ञेय कृत 'अरे यायावर रहेगा याद' और 'एक बूँद सहसा उछली'; डॉ0 भगवतशरण उपाध्याय कृत 'कलकत्ता से पोलिंग' और 'सागर की लहरों पर'; रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत 'देश-विदेश'; प्रभाकर माचवे कृत 'गोरी नज़रों में हम' प्रमुख हैं। परवर्ती लेखकों में मोहन राकेश कृत 'आखिरी चट्टान तक'; प्रभाकर द्विवेदी कृत 'पार उतरि कहँ जइहौं; डॉ0 रघुवंश कृत 'हरी घाटी' तथा धर्मवीर भारती कृत 'यादें यूरोप की' आदि रचनाओं की अधिक चर्चा हुई।

यदि देखा जाय तो पिछले बीस-बाईस वर्षों से हिन्दी का यात्रा-साहित्य अधिक विकास सांस्कृतिक यात्रा-वृत्त भी अब अधिक लिखे जाने लगे हैं। हमारे साहित्यकारों को विदेशी भ्रमण की सुविधाएं भी अधिक मिलने लगी हैं फलतः यात्रा-वृत् तान्तों की गिनती में भी इज़ाफा होने लगा है। अमृता प्रीतम कृत 'इक्कीस पत्तियों का गुलाब'; दिनकर कृत 'मेरी यात्राएं'; डॉ0 नगेन्द्र कृत 'अप्रवासी की यात्राएं'; श्रीकान्त शर्मा कृत 'अपोलो का रथ'; गोविन्द मिश्र कृत 'धुन्ध भरी सुर्खी'; कमलेश्वर कृत 'खण्डित यात्राएं'; विष्णु प्रभाकर कृत 'ज्योति पुंज हिमालय'; रामदरश मिश्र कृत 'तना हुआ इन्द्र धनुष' आदि कृतियां इस विधा की उपलब्धि मानी जाती हैं। यात्रा-वृत्तों में हम दृश्यों, स्थितियों और उनके अनुकूल-प्रतिकूल लेखक की मानसिक प्रतिक्रियाओं से भी परिचित होते हैं। यही कारण है कि यात्रा-वृत्तों का स्वरूप भी लेखक की रुचि, संस्कार, संवेदनशीलता और मानसिकता के अनुसार पृथक्-पृथक् ढल जाता है। विगत डेढ़ दशकों से अन्तर्जाल पर स्थित ब्लॉगों में हिन्दी में यात्रा-वृत्त लेखन की आश्चर्यजनक, परिमाणात्मक अभिवृद्धि देखी जा रही है। विभिन्न ब्लॉगों पर हिन्दी में लिखे हुए यात्रा-वृत्तान्त न केवल परिमाण में भरपूर हैं बल्कि गुणात्मकता में भी अद्वितीय हैं। किन-किन का नाम लिया जाये चाहे वे समीरलाल 'समीर'[5] के यात्रा-संस्मरण हों या मनोज कुमार[6] के, डॉ. विजय कुमार शुक्ल[7] के या शिखा वार्ष्णेय[8] के नीरज जाट[9] के हों अथवा सन्दीप पवार[10] के, सुनील दीपक[11] के हों या मनीष कुमार[12] के सभी एक से एक बेजोड़ हैं। ब्लॉगों पर स्थित यात्रा-वृत्तान्तों में उत्कृष्ट यात्रा-वृत्तान्त के लिए आवश्यक सभी तत्त्व मौजूद देखे जा रहे हैं किन्तु पता नहीं क्यों अभी तक साहित्यिक महाकाश पर इन्हें टिमटिमाते तारों का दर्ज़ा भी नहीं हासिल हो पाया। मैं तो कहूँगी कि यह हमारी ही दृष्टि का दोष है जो हमारी निगाहें वहां तक नहीं पहुँच रही हैं अथवा पुस्तकाकार प्रकाशकीय सामग्री पर हमारी अन्धश्रद्धा अभी तक बनी हुई है जब हम एक विश्वग्राम का स्वप्न साकार करने में लगे हैं। ब्लॉगों की ख़ासियत यह होती है कि सम्पूर्ण विश्व में कहीं से भी ब्लॉग पर प्रकाशन किया जाय वह त्वरित क्रम में सर्वत्र सबको सहज सुलभ हो जाता है और हम न जाने किस मोह में फँसकर समृद्धितर हो रही इस साहित्यिक धरोहर के प्रति आँखें मूंदे हुए हैं। ब्लॉगों पर पर्याप्त और गुणात्मक क्षमता से युक्त हिन्दी में यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य साहित्यिक सामग्रियां उपलब्ध हैं जिन्हें शोध और विचारणा का विषय बनाया ही जाना चाहिए।

इक्कीसवीं सदी में हिन्दी साहित्य ने अभिव्यक्ति की कई नयी-नयी राहों को खोजा, अपनाया। इसे समकालीन रचनात्मक परिदृश्य से परखा जा सकता है। पुनर्पाठ, विमर्श, प्रतिरोध, अधिक लोकतन्त्र अनेक ऐसे धरातल हैं जिनमें नये और पुराने के अन्तर को हम भली-भाँति समझ सकते हैं। नयी सदी में हमारे रचनाकारों ने कहानी, उपन्यास, आलोचना से भिन्न गद्य के अभिव्यक्ति-रूपों में अपनी सक्रियता तथा हलचल बढ़ाई है। न केवल इतना ही बल्कि कई बार वे नये रूपों को आविष्कृत करने का जोखिम भी उठा रहे हैं। गद्य की जैसी समृद्धि और चहल-पहल पिछले कुछ वर्षों से दिखाई दे रही है वह विरल है। यात्रा-वृत्तान्त में इस समय सशक्त लेखन किया जा रहा है। इस लेखन की जितनी यादगार पुस्तकें कुछ वर्षों में दर्ज हुई हैं उतनी सम्भवतः पिछली समूची सदी में नहीं हुई होंगी। ज़ाहिर है यह अत्युक्ति सा लगता कथन हम केवल हिन्दी साहित्य में कथेतर और ग़ैर आलोचनात्मक गद्य प्रमुखतया यात्रा-वृत्तान्तों के बारे में कह रहे हैं।

यहां ज़रा ठहर कर इस प्रश्न पर विचार करना अनुचित नहीं होगा कि यात्रा-वृत्तान्त के इस वैभव की वजह क्या हो सकती है? क्या ऐसा है कि नये ज़माने में कुछ ऐसे अनुभव और संवेदनाएं रचनाकारों की दुनिया में शरीक हो चले हैं जिनकी अभिव्यक्ति कविता, कथा, नाटक से इतर रूपाकारों में ही सम्भव हो सकती है?

यह मुमकिन है; क्योंकि हमारे यथार्थ जगत में इधर यथार्थ का ऐसा हिस्सा जुड़ा है जो गद्य की पुरानी शक्ल में प्रकट होने से इंकार करता है। इस बात की पुष्टि इससे भी हो रही है कि इधर के समर्थ प्रतिभाशाली कथाकारों ने महसूस किया है कि कथा का पारम्परिक ढाँचा अप्रासंगिक हो रहा है क्योंकि उससे मौज़ूदा वास्तविकता की सजीव, सार्थक उपस्थिति नामुमकिन सी हो चली है। अतः एक तरफ़ कथा के पारम्परिक ढाँचे को तोड़कर अपनी बात कही जा रही है तो दूसरी ओर कथा को छोड़कर भी अपनी बात कही जा रही है। मगर यह भी सम्भव है कि यह सक्रियता अपनी मूल विधा में अधिक समय तक काम करने के चलते पैदा हुई ऊब का परिणाम हो या यह भिन्न कुछ कर डालने की ज़िद का नतीजा या इसका उत्स रचनाकारों की उस अक्षमता में हो जिसमें वे मूल विधा में अपनी बात को अच्छी तरह कह

सकने में सफल न हो पा रहे हों यहीं पर यह तोहमत मढ़ी जा सकती है कि यात्रा-वृत्तान्त विधा में या ऐसे अन्य कथेतर विधाओं में एक लेखक कम से कम एककथाकार का शामिल होना कथा से पलायन है। कहानी, उपन्यास की मुश्क़िल और मशक़्क़त भरी राह छोड़कर एक आसानी चुन ली गयी हो। कहानी, उपन्यास में तो रचनाकार अपने और दूसरों के जीवन का अंकन करता है। आख़िर दुनिया का कौन सा पक्ष है जिसे कच्चे माल के रूप में नहीं इस्तेमाल किया जा सकता है? यात्राओं को भी आधार बनाकर दुनिया में अनगिनत कहानियां, उपन्यासों की रचना हुई है। किन्तु यह सत्य है कि कहानी, उपन्यास में एक कठिनाई होती है। वहां जीवन की कथा एवं चरित्रों और घटनाओं के बीच सटीक अन्विति तैयार करनी होती है। उन्हें इस्तेमाल करने का ठोस और ख़ूबसूरत तर्क देना होता है। सृजन की पीड़ा, आनन्द, संघर्ष और यातना से गुज़रे बिना उसकी दुश्वारियों से भिड़े बिना किसी भी स्मृति का उपयोग बेमानी होता है।

तो क्या यह मान लिया जाय कि कथेतर गद्य विशेषतया यात्रा-वृत्तान्त का मौज़ूदा उत्कर्ष महज़ एक शॉर्टकट है? एक सुविधा, सुविधा, जिसे विध्यन्तरण का रंग-बिरंगा आवरण पहनाकर कुछ रचाकारों ने अपना लिया है।

दरअसल इस प्रकार की बातें सन्दर्भ को उत्तेजक ज़रूर बनाती हैं लेकिन हमें सही निष्कर्षों तक नहीं पहुँचातीं क्योंकि यदि कुछ विधाओं ख़ासकर यात्रा-वृत्तान्तों में सृजन के बेशक़ीमती दृष्टान्तों का ज़खीरा देखा जा रहा है तो यह किन्हीं विवशताओं, आसानी या मनबहलाव के चलते नहीं हो रहा। निश्चय ही इसके पीछे हमारे समय और साहित्य के अपने ठोस कारण होने चाहिए।

इस प्रसंग में एक वजह यह भी दिखती है कि बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से लेकर अभी तक का जो वक़्त है उसकी सबसे प्रमुख शिनाख़्त है, हमारी बहुत सारी वस्तुओं, स्थितियों, परिवेश, जीवन-शैली का परिवर्तित होना। भूमण्डलीकरण बड़ी तेज़ी से समाज के असंख्य ऐसे दृश्यों को हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त कर रहा है जो अभी तक जीवन में रचे-बसे थे, या जिनके बीच हमारा जीवन रचा-बसा था। अतः ऐसे में स्वाभाविक ही है कि वे वस्तुएं जो हमारे जीवन में अभी थीं और अभी नहीं हैं हमारी संवेदना को अधिक झकझोरें, अपने प्रति अधिक कशिश पैदा करें। यह अनायास नहीं है कि कथेतर सृजनात्मक गद्य यात्रा-वृत्तान्त के साथ-साथ कहानियों, उपन्यासों, स्मृतियों में बार-बार दस्तक दे रही हैं। कोई असाधारण बात नहीं है कि एक मिट रहा वक़्त अपने अन्त के पहले अमर्त्य हो जाने के लिए फड़फड़ा रहा है। यहां यह कहना भी ज़रूरी है कि कुछ पहले तक हमारी साहित्यिक दुनिया पर व्यवस्था परिवर्तन का महावृत्तान्त अपना प्रभाव बनाये हुए था यानि कि हमारी चिन्ता, स्वप्न और विचार के केन्द्र में समाज था और यह कतई अनुचित नहीं था। समाज की उक्त केन्द्रीयता ने साहित्य का महान गौरव और उसके होने को सार्थकता दी किन्तु विनम्रता पूर्वक कहना है कि उसमें सत्य और सरोकार के दबाव में प्रत्येक लघु और मामूली लेकिन दिलकश सच्चाई जगह नहीं पा रही। रचना में उन्हें उनका अधिकार देने में लेखकों को झिझक सी होती थी पर इधर जब सामाजिक बदलाव की विचारधारा की सैद्धान्तिकी कमोबेश प्रश्नांकित हुईं तो यह समकालीन जीवन की सम्भवतः सबसे भयानक दुर्घटना बनी, किन्तु यह भी हुआ कि मामूली, क्षणभंगुर चीज़ों को भी अपनी सच्चाई, अपनी ख़ूबसूरती, अपना दुःख बताने का अवसर मिला। यथार्थ के धरातल पर जहां दलितों, पिछड़ों और स्त्रियों को सामाजिकता के साथ निज के सुख-दुःख बयान करने का हौसला मिला वहीं कई हाशिए पर पड़ी विधाओं को संजीवनी भी मिली। ध्यान दें कि हिन्दी-लेखन की पारम्परिक गद्य-विधाओं के इतर विधाओं विशेष रूप से यात्रा-वृत्तान्त का जो चमकता स्वरूप आज द्रष्टव्य है उसके प्रमुख कारणों में स्थान की महत्ता में आया परिवर्त्तन प्रमुख है। साहित्यिक जगत में पारम्परिक मान्यताओं के विपरीत महानगरों, विख्यात् सुरम्य स्थलों को गांवों, कस्बों ने परे धकेलकर संस्मरण बनने का साहस दिखाया है। काशी के विश्वनाथ मंदिर, दशाश्वमेघ घाट, सारनाथ को काशी की ही छोटी जगह अस्सी ने पीछे कर दिया है तो मुम्बई, दिल्ली, बंगलूर के बजाय उत्तर प्रदेश के साधारण से गांव विस्कोहर ने हिन्दी के पाठकों को अपने पास बुलाया है। हो सकता है कि चमाचम वैभवपूर्ण परिवेश के मुक़ाबिल धूसर रंग वाले विपन्न परिवेश अथवा व्यक्तियों का यह चयन एक तरह के उपभोक्तावादी संस्कृति, बाज़ारवाद का सृजनात्मक प्रत्याख्यान हो। यात्रा-वृत्तान्त विधा में उत्कृष्ट लेखन के साथ यह भी देखा जा रहा है कि पाठकों के बीच इसे ख़ूब लोकप्रियता हासिल हो रही है तथा पाठक इस पर प्रतिक्रिया कर रहे हैं। इस विधा में पाठकों की बढ़ती हुई रुचि दर्शाती है कि हिन्दी में पाठकों की अभाववेला के कोलाहल के बावज़ूद इसके पाठक बढ़ रहे हैं। दूसरी तरफ़ यह भी कहा जा सकता है कि इस विधा का सशक्त लेखन पाठकों का विस्तार भी कर रहा है। शायद पाठकों को इसमें रोचकता, सरलता और सबसे बड़ी चीज़ प्रामाणिकता के तत्त्व मिलते हैं। इस विधा की आत्यन्तिक शक्ति का अंदाज़ा इससे भी लगाया जा सकता है कि उपन्यास एवं कहानियों में यात्रा-संस्मरण के तत्त्व को प्रचुर मात्रा में शामिल किया जा रहा है। इस प्रवृत्ति को आलोचक कई बार विधाओं की आवाजाही बताते हैं। यहीं थोड़ा रुककर एक ख़तरे पर भी विचार करना आवश्यक है- यह सच है कि कथेतर विधा यात्रा-वृत्तान्त की बढ़ती हुई शक्ति इस बात को साबित करती है कि समय के दुःख, तनाव और इच्छाओं का आदर करने के साथ व्यक्ति की खुशियों, परेशानियों और इच्छाओं का आदर करना भी आवश्यक है। इन सबकी भी एक गरिमा और रचनात्मक मूल्य होता है। ऐसा इसलिए भी कि व्यक्ति की ख़ुशियां, तकलीफ़ें और ख़्वाहिशें समाज से निरपेक्ष कतई नहीं होतीं।

इनका अधिकांश समाज द्वारा ही निर्मित होता है। इनके जन्म, इनकी उम्र और भविष्य की नाल समाज में ही गड़ी रहती है। अतः बहुत आवश्यक है कि जब हम अपनी यादों को यात्रा-वृत्तान्त विधा में स्मरित कर रहे होते हैं तो समाज के पक्ष को विस्मृत न होने दें।

इधर यह भी देखने में आ रहा है कि उक्त विधा के अन्तर्गत ऐसी लिखावट भी हो रही है जिसमें रचनाकर्म की मूल प्रतिज्ञा सामाजिकता विलुप्त रहती है। सनसनीख़ेज वर्णन, आत्मप्रशंसा,

परनिन्दा के टुच्चे औज़ारों के मार्फ़त प्रसिद्धि और भीड़ जुटाना रचनाकारों का इरादा होता है। ये रचयिता ख़ुद को महान् दुखियारा या महान् विपरीत लिंगगामी या महान् विभूति या एक साथ सब कुछ होने की शेखी बघारकर लोगों को आकर्षित करने का उद्योग करते रहते हैं। इनकी रचनाओं में स्मृतियों, अनुभवों को ललित ढंग से इस प्रकार अंकित किया जाता है कि उनसे गुज़रने पर केवल और केवल क्षणिक आवेश ही हाथ आता है। हमें सोचना होगा कि समकालीन साहित्यिक पटल पर रचनाकारों को यदि उपरोक्त विधा के ज़रिये अपनी निजता को पाठकों के बीच पहुँचाकर सामाजिक बनने का अद्‌भुत माहौल उपलब्ध हुआ है तो उसका सतर्क, सार्थक इस्तेमाल करें। पाठक तक जो लेकर जायें वह जीवन और समाज की गरिमा में अभिवृद्धि करने वाला हो। वह किसी सत्य, संवेदना, विचार, समय या स्थान विशेष के चित्रण की सम्पदा से भरा-पूरा हो तो शुभ, प्रीतिकर और श्रेयस्कर होगा। रचना चूँकि सामाजिक सरोकारों और अपने परिवेश से मुक्त नहीं होती, विधा चाहें जो हो, इसलिए यह कहना समीचीन होगा कि उपर्युक्त सड़ांध तथा दुर्गन्ध से अपेक्षाकृत हिन्दी का यात्रा-वृत्तान्त अभी कम ही प्रभावित या यूँ कहिए दुष्प्रभावित हुआ है। आत्मरति और आत्ममुग्धता के बीज और उनका पल्लवन यद्यपि इस विधा में भी द्रष्टव्य है किन्तु वह कमतर है।

निष्कर्षतः रामचन्द्र तिवारी के शब्दों में "यात्रा-वृत्तान्त सामान्य वर्णनात्मक शैली के अतिरिक्त डायरी, पत्र और रिपोतार्ज शैली में भी लिखे जाते हैं। इसलिए इनमें निबन्ध, कथा, संस्मरण आदि कई ग्रन्थ रूपों का आनन्द एक साथ मिलता है। हिन्दी में यात्रा-साहित्य का भविष्य उज्जवल है।" [13]

वास्तव में इस विधा का अध्ययन तथा विश्लेषण, इसको और परिमार्जित करके समृद्ध होने का सुअवसर प्रदान करेगा। यही इस लेख का मूल उत्स और अभीष्ट है।

सन्दर्भ-

1. पद्मचन्द्र कोश, तृतीय संस्करण, 1925, पृ0-402.
2. डॉ0 तिवारी, रामचन्द्र, हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1992 ई0, पृ0-296.
3. तिवारी विश्वमोहन, हिन्दी का यात्रा-साहित्य, एक विहंगम दृष्टि, आलेख प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृ0-37.डॉ0 तिवारी, रामचन्द्र, हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1992 ई0, पृ0-295.
4. डॉ0 तिवारी, रामचन्द्र, हिन्दी का गद्य साहित्य, विष्वविद्यालय प्रकाषन वाराणसी, 1992 ई0, पृ0-297.

❊

शोध-छात्रा (हिन्दी विभाग)
आचार्य नरेनद्र देव किसान पी.जी.कॉलेज बभनान, गोण्डा उ.प्र.

कविता : अमित आनंद

शगुन

अरसा पहले
तब-
जबकि
सूखते तलैय्यों के पास
भागते फिरते थे
तमाम सारस,
मेलों में
हांडियां सुराहियाँ...
बांस की पिपहरियाँ
लाल पीले फीते बिकते थे,
चौपालों पर गाये जाते थे
फसली गीत,
बेटियाँ विदा होते
रोया करती थीं
फूट-फूट
हुचक हुचक कर ,
उसी
दरमियान
विदा कर आया था
मैं भी
अपने तमाम सपने
उसकी डोली में
शगुन की तरह!

❊

कविता : स्वाति शाह

वजूद

आज
घर के सारे आईने
मैं ने
साफ कर दिए

मैं तलाशती रही
अपनें आप को
अपनें अस्तित्व को

कल की धूल-मिट्टी
झटक कर
आज को संवार लूं

एक भ्रम
तेरा होना
अपने वजूद से
उस भ्रम को निकाल दूँ

साफ है आईना
थोड़ा मैं सज-संवर लूं
आईनें को खूबसूरती का गु
माँ दिला दूँ...

❊

"मैत्री" , 9/A
देना बेंक सोसाइटी,
अमीन मार्ग,
राजकोट - 360 001

'सैनिक समाचार':100 साल की सैन्य पत्रकारिता का जीवंत दस्तावेज

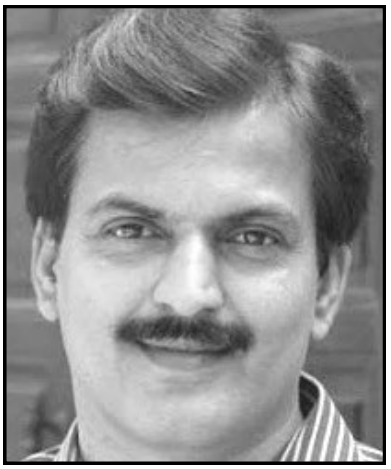

'सैनिक समाचार' का नाम सामने आते ही एक ऐसा जीवंत दस्तावेज सामने आ जाता है जो गुलामी के दौर से लेकर देश के आज़ाद होकर अपने पैरों पर खड़े होने और फिर विकास के पथ पर अग्रसर होने का साक्षी है | पत्रकारिता में गहरी रूचि नहीं रखने वाले लोगों के लिए भले ही यह नाम कुछ अनजाना सा हो सकता है , परन्तु पत्रकारों के लिए तो यह अपने आप में इतिहास है | आखिर दो विश्व युद्धों से लेकर पाकिस्तान से बंगलादेश बनने और फिर भारत के नवनिर्माण की गवाह इस पत्रिका को किसी ऐतिहासिक दस्तावेज से कम कैसे आंका जा सकता है| आज के दौर में जब दुनिया भर में प्रिंट मीडिया दम तोड़ रहा है या फिर इलेक्ट्रानिक मीडिया से लेकर न्यू सोशल मीडिया के दबाव में बदलाव के लिए आत्मसमर्पण को मजबूर है, तब 'सैनिक समाचार' जैसी हिंदी सहित तेरह भाषाओं में सतत रूप से प्रकाशित किसी सरकारी पत्रिका की कल्पना करना भी दूभर लगता है जिसने बाजार के बिना किसी दबाव के अपने प्रकाशन के सौ साल पूरे कर लिए हों |

अतीत के पन्नों से :

रक्षा मंत्रालय की इस आधिकारिक पाक्षिक पत्रिका 'सैनिक समाचार' ने अपनी यात्रा की शुरुआत एक सदी पहले 'फौजी अखबार' के नाम से साप्ताहिक समाचार पत्र के रूप में २ जनवरी १९०९ को इलाहाबाद से की थी | 'फौजी अखबार' के पहले सम्पादकीय में कहा गया था कि- "भारतीय सेना में शिक्षा के प्रसार को देखते हुए सैनिकों के लिए एक पत्र की आवश्यकता महसूस की जा रही थी| आशा है सैनिक कर्मचारी इसका पूरा-पूरा लाभ उठाएंगे|" प्रारंभ में सोलह पृष्ठों का यह अखबार उर्दू में छपता था | कुछ दिन के अंतराल से हिंदी संस्करण भी शुरू हो गया| खास बात यह है उस दौर में भी पाठकों की जरुरत को समझते हुए इसके दो पृष्ठों की भाषा रोमन उर्दू रखी गयी ताकि तत्कालीन अंग्रेज शासकों से लेकर उर्दू नहीं पढ पाने वाले पाठक भी इसका लाभ उठा सकें | उस समय अक्षर बड़े-बड़े और खुले खुले होते थे जिससे किरोसिन (मिट्टी के तेल) की रौशनी में भी आसानी से इसे पढ़ा जा सके | 'फौजी अखबार' की एक प्रति का मूल्य तब महज एक आना होता था | मजे की बात यह है कि प्रकाशन लागत घटने पर १९११ में इसका मूल्य घटाकर तीन पैसा कर दिया गया| समय से साथ पृष्ठों की संख्या,गुणवत्ता और प्रकाशन स्थल भी बदले | अभी तक 'फौजी अखबार' का प्रकाशन इलाहाबाद से शुरू होकर लाहौर होता हुआ शिमला से स्थायी रूप से होने लगा था लेकिन पहाड़ी इलाके में मौसमीय बदलावों के कारण सालभर समान रूप से अखबार का प्रकाशन और वितरण आसान काम नहीं था,इसलिए १९४७ में प्रकाशन कार्यालय दिल्ली लाया गया| देश के विभाजन ने भी अखबार के प्रकाशन पर गहरा असर डाला | दरअसल विभाजन के कारण मुस्लिम कर्मचारियों के पाकिस्तान चले जाने के कारण लगभग सालभर तक 'फौजी अखबार' का प्रकाशन स्थगित भी करना पड़ा|

विश्व युद्ध का असर :

१९१४ में प्रथम विश्व युद्ध ने इसे प्रसार संख्या और पठनीयता के मामले में इतना लोकप्रिय बना दिया कि साप्ताहिक के स्थान पर `फौजी अखबार' के दैनिक संस्करण तक छापने पड़े |१९२३ में पाठकों की मांग पर अंग्रेजी संस्करण की शुरुआत हुई |द्वितीय विश्व युद्ध तक रजत जयंती मना चुके इस अखबार की प्रसार संख्या एक लाख को पार कर गयी | सोचिए वितरण से लेकर प्रचार-प्रसार औरप्रिंटिंग के संसाधनों की सीमितता के समय में एक लाख प्रतियां छापकर वितरित करने के क्या मायने होते हैं | आज के समाचार पत्रों के विशेष परिशिष्ट की तरह ' फौजी अखबार'

ने भी उस समय नौ भाषाओं में चार पन्नों का एक अर्ध साप्ताहिक परिशिष्ट `जंग की ख़बरें' निकला जो इतना लोकप्रिय हुआ कि इसकी तीन लाख से ज्यादा प्रतियां छापनी पड़ी थीं. युद्ध के दौरान इसकी प्रतियां दुनिया भर में मंगाकर पढ़ी जाती थीं. १९४४ में भारतीय सेना में नेपाली सैनिकों की बढ़ती संख्या के मद्देनजर गोरखाली संस्करण की शुरुआत हुई. १९४५ में परिशिष्ट `जंग की ख़बरों' का नाम बदलकर `जवान' कर दिया गया क्योंकि युद्ध खत्म हो जाने के कारण पुराना नाम सार्थक नहीं रह गया था.

बदलाव का दौर :

स्वतंत्रता के साथ ही 'फौजी अखबार' में भी बदलाव की प्रक्रिया शुरू हो गयी. यह बदलाव नाम से लेकर द्रष्टिकोण,गुणवत्ता,पृष्ठ संख्या और तस्वीरों के रूप में भी देखने को मिला. सबसे बड़ा परिवर्तन तो नाम और विचारधारा में हुआ और 'फौजी अखबार' के स्थान पर १९५४ में इसका नाम बदलकर 'सैनिक समाचार' कर दिया गया एवं ब्रिटिश द्रष्टिकोण के स्थान पर विचारों में भारतीयता का समावेश हो गया. इसी दौरान अखबार का आधा दर्जन नई भाषाओं में प्रकाशन भी होने लगा.इसतरह अखबार ने अपनी स्वर्ण जयंती एवं हीरक जयंती पूरी आन- बान-शान के साथ मनाई.१९८३ तक सभी तेरह भाषाओं हिंदी,अंग्रेजी, उर्दू,गोरखाली,पंजाबी मराठी, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, उड़िया, असमी, बंगाली और मलयालम में इसका प्रकाशन होने लगा था. १९८४ में हिंदी और अंग्रेजी संस्करण ने प्लेटिनम जुबली मनाई तो १९९७ में 'सैनिक समाचार' की छपाई रंगीन होने लगी. इसके अलावा साप्ताहिक प्रकाशन को पाक्षिक कर दिया गया तथा इसके पृष्ठों की संख्या भी सभी संस्करणों के लिए ३२ निर्धारित कर दी गयी. अभी तक सभी संस्करण की पृष्ठ संख्या अलग-अलग होती थी. इसके चलते कोई संस्करण सौ पृष्ठों का था तो कोई ४० का.

वीर गाथा की दास्तां :

'सैनिक समाचार' को यदि भारतीय सशस्त्र सेनाओं के अदम्य साहस और अनुकरणीय बहादुरी का दर्पण कहा जाए तो कोई अतिसयोंक्ति नहीं होगी. इसमें शामिल वीर गाथाएं और घटनास्थल की जीवंत तस्वीरें भारतीय सैनिकों के समर्पण,बलिदान और देश की सुरक्षा के प्रति उनकी सजगता को प्रदर्शित करती हैं. उल्लेखनीय बात यह है कि ये वीर गाथाएं न केवल हमें भारतीय सैन्य परंपरा की गौरवशाली विरासत से रूबरू कराती हैं बल्कि नए दौर के अनुरूप सैन्य तैयारियों और सेना में शामिल हो रहे नए हथियारों से भी परिचित कराती हैं. सैनिक समाचार के प्रारंभिक अंकों में खुशवंत सिंह,मुल्कराज आनंद,अमिता मालिक से लेकर इंदिरा गाँधी तक की रचनाएं पढ़ने को मिलती हैं.

सैनिकों की आवाज :

सियाचिन ग्लेशियर में शून्य से कई डिग्री नीचे के तापमान से लेकर रेगिस्तान के तमतमाती रेत और पूर्वोत्तर के झमाझम बरसाती इलाकों तक में अपनी जान दांव पर लगाकर देश की सुरक्षा के लिए सरहद पर तैनात जवानों को आज भी 'सैनिक समाचार' का बेसब्री से इन्तजार रहता है ताकि वे अपनी और अपने साथियों की ख़बरें सत्यता,सटीकता,पारदर्शिता और बिना किसी भेदभाव के साथ जान सकें. सैकड़ों समाचार पत्रों,दर्जनों न्यूज़ चैनलों और अनगिनत सोशल मीडिया की भीड़ के बीच भी इतने लंबे अंतराल तक अपने अस्तित्व को कायम रखना और पाठकों की जिज्ञासा को अपने प्रति बनाए रखना किसी भी पत्र-पत्रिका के गर्व की बात हो सकती है लेकिन जब बात किसी सरकारी पत्रिका की हो तो यह उपलब्धि और भी सराहनीय हो जाती है .

❊

कविता : सरिता भाटिया

फ़ागुन आया झूम के...

रंग बिरंगे पुष्प खिले हैं, फाल्गुन आया झूम के
सखा ने है गुलाल लगाया अपनी सखी को चूम के
अरे दादा दादी,काका काकी,मुन्ना मुन्नी आओ रे
रंग लाल, गुलाबी, नीला, पीला, हरा, बैंगनी लाओ रे
गिले शिकवे सब भूल के, आज गले लग जाओ रे
सब दोस्तों संग मिलके, तुम भी होली मनाओ रे
ढोलक ले कर गलियों में, टोली बनाकर आओ रे
चंदन तिलक करो सभी को गीत खुशी के गाओ रे
भांग पकोडे, बिस्कुट, गुजिया चाय के संग खाओ रे
शिव प्रसाद भांग छक के, मस्ती में छा जाओ रे
फाल्गुन आया झूम के, तुम भी संग झूम जाओ रे
देखो सबको गीला करदो, गुब्बारे पिचकारी लाओ रे

❊

Sarita Bhatia
Bhatia College
R-169,A-3,Vani Vihar
Uttam Nagar,

लघुकथा : त्रिलोक सिंह ठकूरेला

1. अंतर्ध्यान / 2. रीति-रिवाज

1.

वह गरीब किन्तु ईमानदार था| ईश्वर में उसकी पूरी आस्था थी| परिवार में उसके अतिरिक्त माँ, पत्नी एवं दो बच्चे थे | उसका घर बहुत छोटा था,अतः वे सभी बड़ी असुविधापूर्वक घर में रहते थे | ईश्वर को उन पर दया आई, अतः ईश्वर ने प्रकट होकर कहा--" मैं तुम्हारी आस्था से प्रसन्न हूँ,इसलिए तुम लोगों के साथ रहना चाहता हूँ ताकि तुम्हारे सारे अभाव मिट सकें |"

परिवार में ख़ुशी की लहर छा गई,क्योंकि घर में जगह कम थी,अतः उसने अर्थपूर्ण दृष्टि से माँ की ओर देखा | माँ ने पुत्र का आशय समझा एवं ख़ुशी -ख़ुशी घर छोड़कर चल दी ताकि उसका पुत्र अपने परिवार के साथ सुखपूर्वक रह सके |

" जहां माँ का सम्मान नहीं हो, वहां ईश्वर का वास कैसे हो सकता है." ईश्वर ने कहा और अंतर्ध्यान हो गया |

2.

जगतपुरा के पंडित गजानंद के दो बेटे शहर में सरकारी सेवा में थे | परिवार में सबकी सलाह से घर में हैंडपंप लगाने का निर्णय लिया गया |कुए से पानी भरकर लाना अब उन्हें शान के खिलाफ लगने लगा था |

पड़ौसी गाँव से रतिराम एवं चेतराम को बुलाया गया |दोनों दलित थे किन्तु आसपास के इलाके में वे दोनों ही हैंडपंप लगाना जानते थे | दोनों ने सुबह से दोपहर तक मेहनत की एवं हैंडपंप लगाकर तैयार कर दिया | हैंडपंप ने मीठा पानी देना शुरू कर दिया |

पंडित गजानंद द्वारा रतिराम और चेतराम को मेहनताने के साथ-साथ दोपहर का खाना भी दिया गया |खाना खाने के बाद रतिराम एवं चेतराम पानी पीने के लिए जब हैंडपंप की ओर बढ़े तो पंडित गजानंद ने उन्हें रोक दिया |बोले-" अरे भाई ! माना तुम कोई काम जानते हो, तो क्या सारे रीति-रिवाज भुला दोगे |जरा जाति का तो ख़याल रखो | यह ब्राह्मणों का हैंडपंप है |"

उन्होंने लड़के को आवाज़ दी-" राजेश, इन दोनों को लोटे से पानी तो पिला|"

रतिराम और चेतराम ने एक दूसरे की ओर देखा,जैसे पूछ रहे हों- यह कैसा रीति-रिवाज है ?

❊

बंगला संख्या- 99, रेलवे चिकित्सालय के सामने,
आबू रोड - **307026** (राजस्थान)
दूरभाष/मोबाइल नंबर-02974-221422 /09460714267

कविता : लालित्य ललित

यात्राएं

हमेशा सुख देती हो या
कभी-कभी हताशा भी,
इसका मलाल नहीं करना चाहिए ,
कभी अच्छे लोग होते हैं,
कभी-कभी बुरे भी,
अच्छे लोग अपनी आदतों के कारण
अच्छे हैं,
और बुरे लोग अपने कर्मों के कारण
कभी कभार आपको,
निकलना चाहिए खुली हवा में,
खुले विचार,
मन को नई,
ऊर्जा से भर देते हैं ,
मानों या ना मानो
निकलो घूमो,
ठहरो देखो,
बैठो, ताको, निहारो
चहको
चलो, बैठो, देखो
आहें लो,
चाय की चुस्कियां
आपको पूर्ण शिद्दत से
आत्मसात कर देती है
और आप,
उन अनुभूतियों के
होकर रह जाते हो,
और वे पल,
सदा के लिए ,
आपकी स्मृति कलश
में तटस्थ !

❊

डा. लालित्य ललित
बी-3/43,
शकुंतला भवन, पश्चिम विहार
नई दिल्ली-110063

लघुकथा : प्रतिभा शुक्ला

बेटियाँ

मेरी बेटियां, मेरे उपवन के दो फूल। हमारी सुबह पति के गुनगुनाते गीतों के साथ चाय की प्याली और कुनकुने पानी से रोज सुहानी हो जाती है। इनके जगाने का यह तरीका हमारी जिंदगी में अब एक स्वभाव बन चुका है। पहले बेटियों के पास जाकर, "उठो लाल अब आँखे खोलो पानी लाया हूँ, मुह धो लो" से जगाने की कोशिश, फिर भी आँखें न खुलीं तो गुड मार्निंग, सत श्री अकाल, वाहे गुरु, सुप्रभातम समेत ढेर सारे पर्यायवाची जोर-जोर से उवाचना शुरू कर देंगे। अब ऐसे में भला कौन नहीं जाग जाएगा। इन शब्दों से मेरे भीतर बहुत नन्हा सा शिशु पैठ जाता है। तीनो साथ हुए तो मै लक्ष्य बन गयी और बड़ी बेटी, मेरी माँ। पता नहीं कहाँ से उसमे इतनी फुर्ती आ जाती है कि अपने आलस को परे फेंकते हुए मुझ पर पिल पड़ेगी, "उठो-उठो। भला देखो तो सही। पांच बज गए और मैडम जी का सपने देखना बंद न हुआ।" फिर तो छोटी और ये मिलकर जो गुदगुदाना शुरू करेंगे कि मै क्या ,पहाड़ भी

कूद कर खडा हो जाए।

बड़ी बेटी जितनी तेजी से मात्र ग्यारह साल की उम्र में बहुत बड़ी और जिम्मेदार हो गई है, उससे तो भविष्य के बिलगाव की कल्पना भी असह्य हो जाती है। न चाहते हुए भी आंसुओं को रोक नहीं पाती। खुद से स्कूल के लिए तैयार होना और छोटी के लिए भी रोटियां पका कर अपने हाथों खिला देना, लौट कर आने के बाद पूरी तरह उपग्रह की तरह मेरे गिर्द चक्कर लगाना, सूझ बूझ की बड़ी-बड़ी बातें करना हैरत में डाल देता है।

यही कोई महीने भर पहले की बात है, वह दादी के पास से लौटी तो झट सामान रख बोली, "माँ मै अभी आती हूँ। सहेलियों को एक जरूरी बात बतानी है"|

कौन सी बात ? मैंने पूछा

तुम नहीं समझोगी माँ।

क्यों नहीं समझूंगी? तू बता तो सही" मैंने कहा

अरे, वही, जो लड़कियों को होता है। वो बोली

क्या होता है?

ओफ्फो !, समझती ही नहीं। जो महिलाओं को होता है। उसने कहा|

क्या होता है ? कुछ बताएगी भी !

"अब कैसे बताऊँ? समझ लो जिसमे पैड लेना जरुरी हो जाता है"। उसने बताया

हे भगवान! ग्यारह साल की मेरी बेटी इतनी समझदार कैसे हो गयी।

इसके पहले मै कुछ बोलती, उसकी बेचैनी फिर प्रकट हो आई, "हम उनको बता दें, नहीं तो वे किसी दिन मुसीबत में पड़ जाएँगी और लोग जान जायेंगे तो बेईज्जती हो जायेगी।

मैंने रोका, इसमें बताना क्या है?

'यही कि वे हमेशा अपने बैग में पैड रखें'।उसने कहा

मैंने फिर रोका, 'तू नाहक परेशान हो रही है,वे आएँगी तो मै समझा दूंगी।

'फिर ठीक है, वैसे मै जाती तो शायद काफी अच्छे से समझा पाती' वो मासूमियत से बोली

मै मुस्कुराए बिना न रह पायी। वह मेरी बांहों में झूल गयी जैसे सब कुछ भूल गयी हो।

अनजाने में ही सही, उसने जीवन के एक नंगे सच को समय से पहले ही समझ लिया था।

❊

पुलिस अस्पताल के पीछे, तरकापुर रोड,
मिर्ज़ापुर, - उत्तर प्रदेश।

❊

घिरते आकाश को

घिरते आकाश को ताकता हताश :
गहरे नभ में चाँद खोता जाता है;
अन्धकार
चुप-चुप हँसता आता सब ओर !

- शमशेरबहादुर सिंह

तीन कविताएँ : नन्द भारद्वाज

अपना घर

ईंट-गारे की पक्की चहार-दीवारी
और लौह-द्वार से बन्द
इस कोठी के पिछवाड़े
रहते हुए किराये के कोने में
अक्सर याद आ जाया करता है
रेगिस्तान के गुमनाम हलके में
बरसों पीछे छूट गया वह अपना घर -
घर के खुले अहाते में
बारिश से भीगी रेत को देते हुए
अपना मनचाहा आकार
हम अक्सर बनाया करते थे बचपन में
उस घर के भीतर निरापद अपना घर -
बीच आंगन में खुलते गोल आसरों के द्वार
आयताकार ओरे, तिकोनी ढलवां साळ
अनाज की कोठी, बुखारी, गायों की गोर
बछड़ों को शीत-ताप और बारिश से
बचाये रखने की पुख्ता ठौर !
न जाने क्यों
अपना घर बनाते हुए
अक्सर भूल जाया करते थे
घर को घेर कर रखने वाली
वह चहार-दीवारी !

❊

71/247, मध्यम मार्ग, मानसरोवर,
जयपुर – 302020
मोबाइल - 09829103455

होगी कोई और भी सूरत

अभी अभी उठा है जो अलसवेरे
रात भर की नींद से सलामत
देख कर तसल्ली होती है उसे
कि दुनिया वैसी ही रखी है
उसकी आँख में साबुत
जहाँ छूट गई थी बाहर
पिछले मोड़ पर अखबार में !
किन्हीं बची हुई दिलचस्पियों
और ताजा खबरों की उम्मीद में
पलटते हुए सुबह का अखबार -
या टी.वी. ऑन करते
कोई यह तो नहीं अनुमानता होगा
कि पर्दे पर उभरेगी जो सूरत –
पहली सुर्खी
वही बांध कर रख देगी साँसों की
संगति –
फिर वही औचक,
अयाचित होनियों का सिलसिला:
सड़क के ऐन् बीचो-बीच बिखरी
अनगिनत साँसें बिलखता आसमान
हवा में बेरोक बरसता बारूदी सैलाब
सहमी बस्तियों में दूर तक दहशत –
दमकलों की घंटियों में
डूब गई चिड़ियों की चीख-पुकार –
सनसनीखेज खबरों की खोज में
भटक रहे हैं खोजी-छायाकार
दृश्य को और भी विद्रूप बनाती
सुरक्षा सरगर्मियां -
औपचारिक संवेदनाओं की दुधारी मार!
हर हादसे के बाद
अरसे तक डूबा रहता हूं
इसी एक संताप में –
होगी कोई और भी सूरत
इस दी हुई दुनिया में
दरकती दीठ से बाहर ?!

अपने आंसुओं को सहेजकर रखो माई!

(पाकिस्तान में सरेआम बदसलूकी और जुल्म की शिकार उस मजलूम स्त्री के लिए भी इन्साफ न दिला सकी)

अपने शाइस्ता आँसुओं को यहीं सहेजकर
थाम लो माई !
मत बह जाने दो उन बेजान निगाहों की
सूनी बेबसी में –
जो देखते हुए भी कहाँ देख पाती है
रिसकर बाहर आती धारा का अवसाद
कहां साथ दे पाती है उन कुचली सदाओं का
जो बिरले ही उठती है कभी इन्साफ की
हल्की-सी उम्मीद लिये
उन बंद दरवाजों को पीटते
लहू-लुहान हो गये थे हाथों को
और जख्मी होने से रोक लो माई
इन्हीं पर एतबार रखना है अपनी आत्मरक्षा
में
ये जो धड़क रहा है न बेचैनी में
अन्दर-ही-अन्दर धधकती आग का दरिया
–
उसे बचा कर रखो अभी इस बहते लावे से
अफसोस सिर्फ तुम्हीं को क्यों हो माई
सिर्फ तुम्हारी ही आँख से क्यों बहे आँसू
कहाँ हैं उस कोख की वे जिन्दा आँखें
जिसमें किसी नाबदान के कीड़े की तरह
आकार लिया था वहशी दरिन्दों ने
शर्मसार क्यों न हो वह आँगन
वह देहरी
जहाँ वे पले बढ़े और लावारिस छोड़ दिये
गये,
जहाँ का दुलार-पानी पाकर उगलते रहे
जहर
क्यों शर्मसार न हुई वह हवा
अपनी ही निगाहों में डूब कर मर क्यों
वे इन्सानी बस्तियाँ ?

जीवन एक अनवरत यात्रा

किसी ने सच ही कहा है :"लेखन एक अनवरत यात्रा है - जिसका न कोई अंत है न मंजिल ", और यह सच भी है। निरंतर अपने भावों को कलम बद्ध करना ही इस यात्रा की नियति होती है। अपने भावों को कलम बद्ध कर व्यक्ति को संतुष्टि के साथ ख़ुशी का अनुभव भी प्राप्त होता है। यह एक ऐसी यात्रा है जहाँ हर रचना एक पड़ाव होता है और पड़ाव पर आ व्यक्ति कभी तो अपने आप को तरोताजा महसूस करता है और अपनी अगली यात्रा को और दूने उत्साह के साथ तय करता है। कभी कभी उस रचना के शब्द जालों में उलझ व्यक्ति थकान का अनुभव भी करता है, फिर भी यात्रा पर निकल पड़ता है। कभी वह इतना खुश होता है कि ख़ुशी से आत्म विभोर हो अपनी अगली यात्रा को ही भूल जाता है। पर कभी तो उसे ऐसा महसूस होता है मानो सारे शब्द ही ख़त्म हो गए। ऐसी स्थिति में वह अपनी पिछली यात्रा को कामयाबी मान खुश होता है और ख़ुशी की उस धुरी पर घूमता रहता है। यों तो लेखन से आत्म तुष्टि कभी नहीं होती, पर इस यात्रा में कभी कभी ऐसे मोड़ भी आते हैं, जब व्यक्ति आत्म मुग्ध हो उठता है।

लेखन एक कला है और अपने भावों को शब्दों द्वारा जीवंत बनाना ही लेखकीय कला कहलाता है |जो पाठक के मन में छाप छोड़ जाए, वही सार्थक लेखन कहलाता है। लेखक, कवि अपनी रचनाओं में अपने अनुभव अपनी ज़िन्दगी अपने भावों को व्यक्त करते हैं। वह किसी न किसी रूप में उनके इर्द गिर्द घूमती है। उन्हें यह छूट रहती है कि वह कल्पना की उड़ान में, अपने पात्र के माध्यम से अपने मन में आने वाले ज्वार भाटा, अपने अनुभव, विचार, हर्ष, उल्लास, सपने, अपनी इच्छाओं को चाहे तो काट छांटकर या फिर बढ़ा चढ़ाकर लोगों तक पहुंचा सके। पात्र तो निमित्त मात्र होते हैं जिसे अपनी कल्पना, अनुभव से व्यापक दायरा

प्रदान करना और लोगों का अनुभव बनने की कोशिश ही लेखक का उद्देश्य होता है। परन्तु इसके विपरीत आत्म कथा में यह गुंजाइश नहीं होती .....यहाँ पात्र ही उदेश्य होता है और लक्ष्य भी। यहाँ कल्पना की उड़ान में नहीं उड़ा जा सकता, जो कुछ देखा सुना और जो घटित हुआ उसी का वर्णन "अपनी कहानी" का उदेश्य होता है। अपने बारे में लिखना बहुत ही कठिन होता है। यहाँ न कल्पना की उड़ान में उड़ा जा सकता है न ही किसी से ताल मेल बिठाने की जरूरत होती है। बस अपने इर्द गिर्द घटित घटनाओं को, अपने अनुभव, अपने मन के भावों को लिखना ही इसका लक्ष्य होता है। मैं कभी यह नहीं सोचती थी कि मैं कुछ लिखूंगी| मैं तो बस हमसफ़र थी ,एक ऐसे व्यक्तित्व की जिसने अपने जीवन के चंद वर्षों में उतार चढ़ाव भरी जिंदगी को भी बड़े ही सहज, स्वाभाविक ढंग से सारी जिम्मेदारियों को निभाते हुए बिताया। एक बार मुझे किसी पत्रिका के लिए कुछ लिखने को कहा गया। मैं बस इतना ही लिख पाई मैं क्या लिखूं.....मेरी तो लेखनी ही छिन गयी है। पर आज महसूस करती हूँ कि मुझे एक अलौकिक लेखनी और उस लेखनी को रचना की जिम्मेदारी दे दी गयी है। न जाने क्यों?आज लिखने की इच्छा हो रही है। मैं तो केवल अपनी अभिव्यक्ति किया करती थी | लेखनी और लिखने वाला तो कोई और था। उसके सामने मैं अपने आप को उसकी सहचरी, शिष्या एवं न जाने क्या क्या समझ बैठती थी। क्या उनकी कभी कोई रचना ऐसी है जो मैंने शुरू होने से पहले तीन चार बार न सुनी हो, या यों कह सकती हूँ कि लगभग याद ही हो जाता था। एक एक पात्र दिमाग मे इस प्रकार बैठ जाते थे कि

एक सच्ची घटना सी मानस पटल पर छा जाता था ।

अदभुत कलाकार थे। एक कलाकार मे एक साथ इतने सारे गुण बहुत कम देखने को मिलता है। एक साथ लेखक निर्देशक, कलाकार सभी तो थे वो। मुझे क्या पता कि ऐसे आदमी का साथ ज्यादा दिनों का नहीं होता है। ऐसे व्यक्ति की भगवान को भी उतनी ही जरूरत होती है जितना हम मनुष्यों को। परन्तु यदि ईश्वर हैं और मैं कभी उनसे मिली तो एक प्रश्न अवश्य पूछूंगी कि मेरी कौन सी गल्ती की सज़ा उन्होंने मुझे दी है। मैंने तो कभी किसी का बुरा नहीं चाहा, न ही भगवान से कभी कुछ मांगी। मैं तो सिर्फ़ इतना चाहा थी कि सदा उनका साथ रहे।

यह शायद किसी को अंदाज़ भी न हो कि मुझे हर पल हर क्षण उनकी याद आती है और मैं उन्ही स्मृतियों के सहारे जिंदा हूँ और अपनी जीवन नैया खिंच रही हूँ। उनका प्यार ही है जो मैं अपने आप को संभाल पाई। इतने कम दिनों का साथ फिर भी उन्होंने जो मुझे प्यार दिया, मुझ पर विश्वास किया वह मैं किसे कहूं और कैसे भूलूँ ? मैं कैसे कहूं कि अभी भी मैं उन्हें अपने सपनों में पाती हूँ। मैं जब भी उनकी फोटो के सामने खड़ी हो जाती हूँ उस समय ऐसा महसूस होता है मानो कह रहे हों , मैं सदा तुम्हारे साथ हूँ।

उनके जाने के बाद मैं ठीक से रो भी तो नहीं पाई। बच्चों को देखकर ऐसा लगा यदि मैं टूट जाउंगी तो उन्हें कौन सम्भालेगा। परन्तु उनकी एक दो बातें मुझे सदा रुला देतीं हैं। ऊपर से मजबूत दिखने या दिखाने का नाटक करने वाली का रातों के अन्धकार मे सब्र का बाँध टूट जाता है।

एक दिन अचानक बीमारी के दिनों मे इन्होने कहा " मेरे बाद तुम्हारा क्या होगा"? उनका यह वाक्य जब जब मुझे याद आती है, मैं खूब रोती हूँ। क्यों कहा था ऐसा ? एक दिन अन्तिम कुछ महीने पहले बुखार से तप रहे थे। मैं उनके सर को सहला रही थी । अचानक मेरी गोद मे सर रख कर खूब जोर जोर से रोते हुए कहने लगे, “इतना बड़ा परिवार रहते हुए मेरा कोई नहीं है।” मैं तो पहले इन्हें सांत्वना देते हुए कह गयी कोई बात नहीं मैं हूँ न आपके साथ सदा। परन्तु इतना बोलने के साथ ही मेरे भी सब्र का बाँध टूट गया और हम दोनों एक दूसरे को पकड़ खूब रोये। यह बात जब भी मुझे याद आती है, मैं विचलित हो जाती हूँ। मुझे लगता है उनके ह्रदय मे कितना कष्ट हुआ होगा जो ऐसी बात उनके मुँह से निकली होगी।

वैसे मैं शुरू से ही भावुक हूँ परन्तु इनकी बीमारी ने जहाँ मुझे आत्म बल दिया वहीँ मुझे और भावुक भी बना दिया। मैं तो कोशिश करती कि कभी न रोऊँ पर आंसुओं को तो जैसे इंतज़ार ही रहता था कि कब मौका मिले और निकल पड़े। इनके हँसाने चिढाने पर भी मुझे रोना आ जाता था। एक दिन इसी तरह कुछ कह कर चिढा दिया और जब मैं रोने लगी तो कह पड़े तुम बहुत सीधी हो तुम्हारा गुजारा कैसे चलेगा। शायद उन्हें मेरी चिंता थी कि उनके बाद मैं कैसे रह पाउंगी। उनके हाव भाव से यह तो पता चलता था कि वो मुझे कितना चाहते थे पर अभिव्यक्ति वे अपनी अन्तिम दिनों मे करने लगे थे जो कि मुझे रुला दिया करती थी। उनके सामने तो मैं हंस कर टाल जाती थी पर रात के अंधेरे मे मेरे सब्र का बाँध टूट जाता था और कभी कभी तो मैं सारी रात यह सोचकर रोती रहती कि अब शायद यह खुशी ज्यादा दिनों की नहीं है।

मुझे वे दिन अभी भी याद है। मैं उस दिन को कैसे भूल सकती हूँ। वह तो मेरे लिए सबसे अशुभ दिन था। वेल्लोर मे जब डॉक्टर ने मेरे ही सामने इनकी बीमारी का सब कुछ साफ साफ बताया था और साथ ही यह भी कहा कि इस बीमारी में पन्द्रह साल से ज्यादा जिंदा रहना मुश्किल है। यह सुनने के बाद मुझ पर क्या बीती यह मेरे भी कल्पना के बाहर है। आज मैं उसका वर्णन नहीं कर सकती। मैं क्या कभी सपने मे भी सोची थी कि उनका साथ बस इतने ही दिनों का था। उस रात उन्होंने तो कुछ नहीं कहा पर उनके हाव भाव और मुद्रा सब कुछ बता रहे थे। मैं उनके नस नस को पहचानती थी, या यों कह सकती हूँ कि हम दोनों एक दूसरे को अच्छी तरह पहचानते थे। उस रात बहुत देर से ही, ये तो सो गए पर मुझे ज़रा भी नींद नहीं आयी और सारी रात रोते हुए ही बीत गया।

लोग कहतें हैं कि भगवान जो भी करता है अच्छा ही करता है, पर मैं क्या कहूं मेरे तो समझ में ही कुछ नहीं आता? मैं कैसे विश्वास करुँ कि उसने जो मेरे साथ किया वह सही है? मैं तो यही कहूँगी कि भगवान किसी को ज्यादा नहीं देता। उसे जब यह लगने लगता है कि अब ज्यादा हो रहा है तो झट उसके साथ कुछ ऐसा कर देता है जिससे फिर संतुलित हो जाता है। मेरे साथ तो भगवान ने कभी न्याय ही नहीं किया। आज तक मेरी एक भी

इच्छा भगवान ने पूरी नहीं की या फिर यह कि मैंने एक ही इच्छा की थी, वह भी भगवान ने पूरी नहीं की। मैंने भगवान से सिर्फ़ इनका साथ ही तो माँगा था? पता नहीं क्यों मुझे शुरू से ही अर्थात बचपन से ही अकेलेपन से बहुत डर लगता था। ईश्वर की ऐसी विडंबना कि बचपन मे ही मुझे माँ से अलग रहना पड़ा। बाबूजी का तबादला हो गया से जनकपुर ,फिर अरुणाचल हो जाने की वजह से मुझे उनसे दूर अपनी मौसी के पास रहना पड़ा। तब से लेकर शादी तक माँ से अलग मौसी के पास रही। उस समय जब मुझे माँ के पास अच्छा लगता था, उससे अलग रहना पड़ा। शादी के बाद लड़कियों को अपने पति के पास रहना अच्छा लगता है। उस समय मुझे कई कारणों से अपनी माँ के पास कई सालों तक रहना पड़ा। पहले माँ के पास छुट्टियों मे जाने का इंतजार करती थी, बाद मे इनके आने का इंतजार करने लगी। इसी तरह दिन कटने लगा और एक समय आया जब हम साथ रहने लगे। जो भी था चाहे पैसे की तंगी हो या जो भी हम अपने बच्चों के साथ खुश थे और हमारा जीवन अच्छे से व्यतीत हो रहा था। अचानक भगवान ने फिर ऐसा थप्पड़ दिया कि उसकी चोट को भुलाना नामुमकिन है। आज मेरे पास पैसा है घर है बाकी सभी कुछ है पर नहीं है तो साथ।

❊

Flat No. 232 Vijaya Heritage, Uliyan , Kadma,
Jamshedpur - 831005, ph - 0657- 2306167,
Cell - 9431117484,
email- kusumthakur1956@gmail.com

स्वागत

संरक्षक सदस्य

Rs. 5000/-

गीत : आरिफ़ जमाली

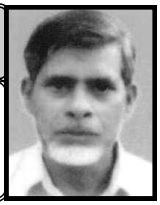

गीत गाता हूँ

जो नफरतों को मिटा दे वो गीत गाता हूँ
जो दिल से दिल को मिला दे वो गीत गाता हूँ

मैं शब्द शब्द से इक रौशनी बिखेरूंगा
अंधेरा जग से मिटा दे वो गीत गाता हूँ

कोई किसी से खफ़ा हो मैं सह नहीं सकता
मुहब्बतों की हवा दे वो गीत गाता हूँ

यह कुर्सियों ने लगाई है आग शहरों में
जो गीत आग बुझा दे वो गीत गाता हूँ

खुदा के नाम पे बनते हैं मंदिरों-मस्जिद
खुदा की याद दिला दे वो गीत गाता हूँ

मैं अपने गीत के मरहम लगाऊँ ज़ख्मों पर
तड़पती रूह दुआ दे वो गीत गाता हूँ

जगाऊँ दर्द मैं आरिफ़ सभी सीनों में
जो पत्थरों को रुला दे वो गीत गाता हूँ

*

सचिव, हिन्दी-उर्दू परिषद, पो. कामटी-441001
नागपुर (महाराष्ट्र) मो. 08698749022

कहानी : रंजना श्रीवास्तव

ज़हर

एक लड़की जो समर्थ है उसे अपनाना आसान नहीं | समर्थता लड़की का किरदार नहीं | एक लड़की का पराजित चेहरा, उसकी फीकी उदासी और सहमा-सिकुड़ा होना ही उसकी नैतिकता की पहचान है| एक लड़की के दुःख में सब उसके साथ हैं लेकिन उसके साहस में कतई नहीं | ये कहानी एक ऐसे ही शहर की है जहाँ एक लड़की की प्रतिभा से हकबकाए लोग उसे उस शहर से ही पूरी तरह खारिज कर देना चाहते हैं-- कौन लोग हैं ये जो उसकी प्रतिभा के खिलाफ अपनी ईर्ष्या को ज़हर की तरह इस्तेमाल कर रहे हैं -- उसकी उपलब्धियों को इस शहर की सरहद से बाहर फेंक देने की फिराक में हैं| इस शहर के कुछ लोग बतौर लेखक अपने महान होने के विज्ञापनों में शामिल हैं और उस लड़की को लगातार इस शहर से बाहर फेंक रहे हैं क्योंकि एक लड़की को सम्मान से नवाज़ा जाना उनको तकलीफ व दुःख देता है, उस लड़की का इस शहर में फैलते जाना उन्हें दुःख देता है| इसीलिये लड़की ने हिन्दुस्तान के हर शहर में अपनी पहचान बना ली पर अपने शहर की सरहद के बीच उसे लगातार मारा गया-- इस शहर पर जिनका आतंक है वो खुद को लेखक मान लिए जाने की जिद ठाने बैठे हैं जबकि उनके लिए राजनीति सही जगह है| वो लड़की जानती है कि वो यहाँ हमेशा ही खारिज रहेगी क्योंकि कुछ लोगों की ईर्ष्या की गिरफ्त में फंसकर वह कभी भी खुद को ख़त्म करना नहीं चाहेगी| ये सामंती मर्द उसके प्रति बला की नफरत से लैस हैं | वो पूरा शहर होने की फ़िराक में उस लड़की को मुसलसल ज़हर का इंजेक्शन दे रहे हैं | अपमान की सीरिंज से उसके बदन में सूराख बना रहे हैं - लेकिन क्यों? सत्रह सालों का लम्बा वक्त और नफरत की एक लम्बी कहानी का रक्तिम वज़ूद -- क्या किसी नफरत की उम्र इतनी लम्बी होती है ? आपको भी ये हैरतअंगेज़ किस्सा सुनाना चाहती हूँ मैं |

निमिषा सक्सेना समकालीन कविता का एक जाना – पहचाना चेहरा, एक कमसिन व प्रबुद्ध आलोचक, एक बेहतरीन शायरा और एक संवेदनशील कहानीकार और सबसे बढ़कर ईमानदार इंसान | कहानी की शुरुआत वहां से क्यों न हो जहाँ से कहानी का जन्म हुआ ---- अरे भाई शुरुआत तो हमेशा जन्म से होनी चाहिए न! तो चलें अतीत की खिड़की खोलते हैं | इस कहानी की शुरुआत १९९७ के उन अंतिम दिनों से होती है जब उस लड़की निमिषा ने एक टीचर की हैसियत से यहाँ के एक हायर सेकेंडरी स्कूल में नौकरी ज्वाइन की थी और देखते ही देखते इस शहर की

आबोहवा में घुल-मिल गयी थी | इस शहर की फिंजा और खूबसूरती ने उसका मन मोह लिया था| निमिषा को दसवीं कक्षा की क्लास टीचर नियुक्त किया गया था और अच्छे परिणाम की सभी ज़िम्मेदारियाँ सौंप दी गयी थीं उसने जी लगाकर काम किया और बच्चों को मनोवैज्ञानिक रूप से एग्जाम्स के लिए तैयार किया| उसके मीठे व्यवहार से बच्चे उसके इर्द -गिर्द मंडराने लगे और वो खुद उनके संग एक बच्ची बनती गयी | उसी समय उसकी दोस्ती वीना माथुर नाम के एक असिस्टेंट टीचर से हुई और ये दोस्ती गहरी होती चली गयी| निमिषा जब भी कागज़ पर अपनी अभिव्यक्तियों को उतारती एक ललक उसके आँखों की रौशनी बनकर धधकने लगती और अपनी सृजनात्मकता से अभिभूत हो वह अपनी कविताएँ जब-तब बीना को पढ़वाती रहती | वीना को वह एक अलग दुनिया की वाशिंदा लगती--- एक अजीब आकर्षण उसे निमिषा की ओर खींचता |

फिर वीना ने एक दिन उससे कहा था "निमिषा इन्हें डायरी में बंद रखने की बजाय दुनिया के सामने रखो , लोग तुम्हें जानने-पहचानने लगेंगे |" निमिषा बोलती--"धत! मैं तो ऐसे ही कुछ न कुछ लिख लेती हूँ, मेरी चीज़ें कभी छपेंगी ऐसा तो मैने कभी सपने में भी नहीं सोचा|" "तो, सोचो न! अब सोचो |" वीना का जवाब था और दूसरे ही दिन शहर के अख़बारों के नाम और पते की एक लिस्ट वीना ने उसे थमा दी फिर क्या था आनन्-फानन में उसने शहर के दो अखबारों के लिए अपनी कविताएँ भेज दीं और शीघ्र ही उनका प्रकाशन भी हुआ | निमिषा देखते ही देखते पूरे शहर में चर्चा का विषय बन गयी | उसके एक गीत के बोल युवाओं में बेहद चर्चित हुए जो कुछ यूँ थे

"बन गयी आंसुओं की हर लड़ी बरसात / करने लगे जब तुम मन से मन की बात "-- ये गीत स्कूल की लड़कियों की जुबान पर ठहर सा गया| निमिषा मैम को उनकी स्टूडेंट (लड़कियां) दिन भर घेरे रहतीं | निमिषा ने उन्हें आज़ादी के सही मायने बताये तो अनुशासित भी किया और अपनी शिक्षा के प्रति जागरूक भी बनाया| उस साल निमिषा के ४० स्टूडेंट्स में से ३० फर्स्ट डिवीज़न में निकले तो स्कूल के सचिव ने उसकी आवभगत में कोई कोर-कसर नहीं छोडी और उसे अगले साल के लिए बारहवीं कक्षा का उत्तरदायित्व दे दिया गया|

इसी बीच निमिषा की लगभग ५० कविताएँ यहाँ के दैनिक "आम पथ" से प्रकाशित हो चुकी थीं| वो अखबार के लिए स्कूल का पता और फोन नम्बर ही दिया करती थी इसीलिए स्कूल के पते पर ही उसके पाठकों के पत्र आने शुरू हो गए | अब उसे गोष्ठियों में कविता पाठ के लिए बुलाया जाने लगा और वहीं उसकी मुलाकात दिव्य प्रकाश महेश्वरी से हुई जिन्होंने उसकी छोटी सी हस्ती को एक ऊँचा मकाम सौंपा| उन्होंने उसे बताया था कि वो कई दिनों से निमिषा का फोन नंबर तलाश रहे थे ताकि अखबार से निकलने वाली उसकी संवेदनशील कविताओं के लिए उसे बधाई दे सकें| यही दिव्य प्रकाश महेश्वरी बाद में उसके साहित्यिक गुरु बने| और यहीं से निमिषा के आगे बढ़ते जाने का सिलसिला भी शुरू हुआ| यहाँ की राज्य सरकार और एक मशहूर नाट्य अकादमी के सम्मिलित तत्वाधान में उसे उस वर्ष के सर्वश्रेष्ठ्य कविता लेखन सम्मान से नवाज़ा गया| उसके नाम को प्रस्तावित करने वालों में दिव्य जी का बहुत बड़ा योगदान था | इस तरह से इस शहर में उसके प्रतिभा की पहली मुहर लगी लेकिन इस आयोजन में वो शहर के रचनाकारों को न पाकर थोड़े उदास दिखे और लगातार निमिषा से ये पूछते रहे कि यहाँ के स्थानीय लेखकों के आने पर उन्हें बताया जाये पर निमिषा को एक भी चेहरा जाना-पहचाना न दिखा | शायद निमिषा को अभी तक किसी के बारे में ठीक से पता भी नहीं था| इस सम्मान की सूचना और समारोह की विस्तृत रिपोर्टिंग पत्रकार रास बिहारी पाण्डेय ने बेहद भव्य एवम सम्मानीय ढंग से आम पथ में प्रकाशित की तो मानों स्थानीय साहित्यकारों को सांप सूंघ गया | निमिषा को बाद में पता चला कि सबने मिलकर इस बात का कडा विरोध किया था और पांडेय जी को भला-बुरा भी कहा था| पाण्डेय जी से ही उसे यहाँ के साहित्यिक ग्रुप की जानकारी भी मिली थी जिसमे वी पी सिंह, श्री प्रकाश पाण्डेय, मनमोहन शुक्ल और शिवालिक रॉय धर्मेन्द्र मुख्य रूप से सक्रिय सदस्य थे | रास बिहारी को इन लोगों ने डराया-धमकाया भी था पर रास बिहारी डरने वालों में से कतई नहीं थे, उन्हें जो सही लगता वही करते| ये तथाकथित लोग स्वयं सम्मानीय थे और आपसी भाईचारे से अपना दबदबा बनाए रखने में कामयाब हो जाते थे | निमिषा ने जब इन लोगों के बारे में सुना तो हतप्रभ रह गयी| पर ये तो उनकी ईर्ष्या की शुरआत थी | खैर उसने इन लोगों के पचड़े से दूर रहने का निश्चय किया|

वह उन दिनों अपने प्रथम कविता संकलन की तैयारी में व्यस्त थी और जल्दी ही उसके काव्य-संकलन (चुटकी भर धूप) का प्रकाशन हो गया| वो इतनी सीधी व मासूम थी कि उसे पुस्तक विमोचन के बारे में भी ठीक से कुछ पता न था | लेकिन महेश्वरी जी ने उसके काव्य-संकलन के विमोचन के लिए एक भव्य गोष्ठी का आयोजन किया था |

गोष्ठी दो सत्र में आयोजित थी—प्रथम सत्र में आलोचना कार्य आयोजित था और दूसरे में काव्य गोष्ठी का आयोजन| निमिषा की आँखों में सपनों की खुशबू तैर रही थी ----- इतना सम्मान, इतना आदर ---भला वो इस योग्य है?---- क्या रेशम-रेशम सा ये लम्हां उसका अपना है | बला की संवेदनशील निमिषा की आँखें भरने लगी थीं कि तभी सभा का संचालन करने के लिए मनमोहन शुक्ल को आमंत्रित किया गया| सभापति महेश्वरी जी ने भी अपना स्थान संभाला | एक-एक करके आलोचक उसकी पुस्तक पर अपने विचार रख रहे थे कि श्री प्रकाश पाण्डेय को वक्ता के रूप में मंच पर बुलाया गया ----पाण्डेय डायरी में अपने लिखे को पढ रहे थे कि तभी उनकी सांसे, उनकी धडकनें आवेशित होने लगीं -- केंद्र में कविता नहीं थी, निमिषा थी, निमिषा को चरित्रहीन साबित करने की कोशिश में उसकी किसी प्रेम

कविता का सहारा लिया जा रहा था| जब वक्तव्य अमानवीय होने लगा तो मनमोहन शुक्ल को उन्हें बीच में ही रोकना पड़ा पर ये भी प्रायोजित ही था क्योंकि मनमोहन शुक्ल भी वही बातें चाशनी में लपेटकर दुहरा रहे थे — सभा में सभी स्तब्ध और सुन्न थे कि ये चल क्या रहा है, आखिर ये किस तरह की समीक्षा पढ़ी जा रही है कि उसी समय दिव्य प्रकाश महेश्वरी ने उसे मंच पर आकर उबार लिया | उन्होंने सख्ती से इस बढ़ते हुए तूफ़ान को रोका भर नहीं अपितु निमिषा को जवाब देने के लिए आमंत्रित भी किया पर निमिषा इतनी परिपक्व कहाँ थी उन दिनों कि पलटकर जवाब दे सके वो तो उन लोगों की असंवेदनशीलता से आहत थी जो अरले दर्ज़े के बर्बर व क्रूर थे तभी तो अब तक उनमे कोई भी फर्क नहीं आया बल्कि जैसे-जैसे निमिषा हिन्दुस्तान में फैली वैसे-वैसे स्थानीय प्रकोपों की बिजलियाँ उसके भीतर के जज्बाती हिस्से में अपना कहर ढातीं रहीं | वह उन क्षणों को याद करती है तो अब भी काँप उठती है | उस दिन वहां बैठीं औरतों का सिर उनकी बेशर्मी से झुक गया था | बाद में अपनी ओर से महेश्वरी जी जितना उसे बचा सकते थे, उन्होंने बचाया| अब भी जब उस दिन को याद करती है तो उनके प्रति कृतज्ञता से भर उठती है—— हालाँकि बहुत जल्दी एक मामूली सी बीमारी ने उन्हें इस दुनिया से उठा लिया था| अपमान की आंच में पक-पककर निमिषा अपने लिए एक लौह दुर्ग का निर्माण करती गयी | ये वही दिन था जिसने निमिषा को समंदर का सीना चीरने का हौसला प्रदान किया| उस दिन ने उसे अपने दुःख, तकलीफ और आवेग को गलाकर सृजनात्मक चिंतन में बदलने का हुनर सौंपा| निमिषा की कविताएँ लगातार दैनिक अखबारों से निकलती रही| पर उसे यहाँ ठहरने से रोकने का काम किया रास बिहारी पाण्डेय ने और शहर की सीमा लांघने के लिए उकसाया |

निमिषा के आम पथ की उड़ान अब भारत के अलग-अलग शहरों और पत्रिकाओं के कागज़ पर उसके हौसले बुलंद करने लगी| उसके इस काम में सबसे बड़ा सहारा समर ने दिया वो सिर्फ पति ही नहीं एक अच्छे साथी भी साबित हुए क्योंकि वो निमिषा की प्रतिभा को पहचानने लगे थे, वो जान चुके थे कि निमिषा शायद इसी के लिए बनी है| निमिषा धीरे-धीरे इस शहर से लगभग कटती चली गयी | उसकी छटपटाहट, उसकी बेचैनी और उसकी जिद ने उससे अच्छी रचनाओं को न सिर्फ लिखवाया बल्कि एक ईमानदार रचनाकार के रूप में महिमामंडित भी किया पर कला की यात्रा हमेशा अधूरी व अतृप्त होती है ,तभी इंसान एक अच्छे रचनाकार के रूप में ढलता चला जाता है | निमिषा के पास समय व समाज के अनगिन सवाल वेदना बनकर छटपटाते रहे थे और उसके भीतर उमड़ती-घुमड़ती नदी हमेशा बांध तोड़ने को तैयार रहती| एक स्टेट से दूसरे स्टेट और एक शहर से दूसरे शहर उसकी रचना-यात्रा चलती रही | उसे लेकर चलने वाली स्थानीय चर्चाओं व उसके अपने शहर के बीच की हलचल से वो सर्वथा अनजान व अनभिज्ञ थी | यहाँ के स्थानीय साहित्यकारों का ज़श्न निमिषा के बगैर फीका व उदास रहने लगा था—उनके सत्ता सुख को देखने वाला विशिष्ट व्यक्ति ही उनके सीमा क्षेत्र से बाहर जा चुका था अतः उसे दुबारा अपने ग्रुप में शामिल किये जाने के लिए पैंतरेबाज़ी शुरू हो गयी | यकायक उसे सूचना भेजी गयी की उसे जनवादी संगठन की जिला इकाई में बतौर वाइस प्रेसिडेंट चुन लिया गया .....क्योंकि अब वो एक स्थानीय लेखक भर नहीं है| उसे बेहद अजीब लगी थी ये बात क्योंकि बिना इलेक्शन के भी ऐसा संभव है वो ये बात नहीं जानती थी—उसे लगा की शायद ये लोग बदल रहे हैं और उसे बराबर का सम्मान देना चाहते हैं, पता नहीं क्यों उसे ये बात अच्छी लगी | पर निमिषा गलत थी क्योंकि जल्दी ही उन्होंने यह जताना शुरू कर दिया था कि उनकी बदौलत ही निमिषा को यह सम्मानजनक पदवी मिली है वो संगठन से समबन्धित उसके विचारों को सुनने के बाद इग्नोर कर देते थे और कुछ बोलने पर एक स्वर में चिल्ला पड़ते थे कि किसकी बदौलत उसे इस कुर्सी पर बैठाया गया है—वो उसे उलझाने में और निराश करने में अपनी पूरी उर्जा व्यय कर देते थे- धीरे-धीरे उसे सारी बात समझ में आने लगी थी—उसने जब तमाम तरह की अनियमितताओं को लेकर कडा विरोध शुरू किया तो समवेत स्वर में हर गलत को सही साबित करने के लिए

उस पर दबाव डाला जाने लगा | उसे ये जनवादी संगठन एक गुंडा संगठन जैसा लगने लगा ,जहाँ औरत नाम की शख्सियत का कुछ भी बोलना गुनाह था| वो अपने सत्तावादी मुखौटे का इस्तेमाल कर अपना दबदबा उस पर कायम करना चाहते थे ताकि उसमें उलझकर निमिषा अपने रचनात्मक कार्यों से पूरी तरह भटक जाये|

निमिषा धीरे-धीरे संगठन की मीटिंग में जाने से कतराने लगी और दुबारा अपने लेखन में खुद को व्यवस्थित किया | उन्हें ये बात बेहद बुरी लगी और निमिषा के दुःख ने उसे "गैंग" जैसी कहानी की रचना करने पर मजबूर किया| ये कहानी उन्हीं दिनों एक चर्चित पत्रिका से प्रकाशित हुई | उस कहानी को लेकर एक लम्बा युद्ध छेड़ने की योजना बनायी गयी | आश्चर्य कि कहानी के बीच सबने अपने चरित्र को खुद-ब-खुद ढूंढ लिया था और एक लम्बे महाभारत में उलझने की ठान ली जबकि कहानी के बीच इनके नाम का ज़िक्र तक नहीं था | इस युद्ध की रणनीति बेहद भयावनी थी जिसका ज़िक्र करना यहाँ बेहद ज़रूरी है तभी पाठक ज़हर के अभिप्राय को ठीक-ठीक समझने में सफल सिद्ध होंगें| उन्होंने अपनी योजना में इस शहर के एक कॉलेज प्रोफ़ेसर विजय राव को सम्मिलित किया और बदले में उसे मंच पर एक सम्मानीय व्यक्ति के रूप में उपस्थित किया गया | वो प्रोफ़ेसर भी उन्हें अपने कॉलेज के समारोह व उत्सवों में ससम्मान बुलाया करता था| दोनों पक्ष एक-दूसरे को एडवरटाइज़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे और समारोहों की कुर्सियों पर विराजमान रहते थे जैसे कि राजनीतिज्ञ व नौकरशाह हों या फिर पुलिस व प्रशासन की जुगलबंदियाँ| हाँ मैं कहानी के बीच ज़रा भटक गयी थी और थोड़े से तैश में भी आ गयी थी क्योंकि निमिषा मेरे बेहद करीब है| बाद में चला इस जनवादी संगठन से निमिषा को बाहर करने का सिलसिला| इस सिलसिले के पहले कुछ और बातें बतानी ज़रूरी हो जाती हैं एक दिन निमिषा के पास प्रिया नाम की एक स्टूडेंट आयी जो विजय राव के ही कॉलेज की स्टूडेंट थी और निमिषा से बेहद प्यार से बातें किया करती थी , उसने इस ग्रुप के बारे में बहुत ऊट – पटांग बातें की, कि कैसे वे चारो के चारो उसे एक अच्छा साहित्यकार

बनने का लालच देकर उसे बहलाते-फुसलाते हैं और अपने घरों तक अकेले बुलाते रहते हैं | वो शायद उनके चरित्र के बारे में कुछ असंगत बातें बताना चाहती थी पर निमिषा ने यह कहकर टाला कि तुम्हें वहां जाने की क्या ज़रूरत है? वो लोग जब इतने गिरे हुए लोग हैं तो तुम्हारा वहां जाने का क्या मतलब बनता है | इसके बाद वह जब-तब निमिषा को फोन करके अपनी परेशानिया शेयर करने लगी | निमिषा को जो ठीक लगता वो कहती और उसे सांत्वना भी देती फिर बात आयी-गयी हो जाती | इस तरह प्रिया उसके लिए बेहद आत्मीय बन गयी बिलकुल उसकी छोटी बहन की तरह | उसने रक्षाबंधन के दिन समीर को राखी भी बांधी तो निमिषा गदगद हो गयी | तीन सालों तक प्रिया उसकी अजीज़ बनी रही और फिर यकायक उसके यहाँ आना छोड़ दिया| उसी के बाद एक दिन वी पी सिंह का धमकी भरा फोन निमिषा के पास आया कि वो उसके खिलाफ कोर्ट तक जायेंगे और उसकी आवाज़ में टेप किये हुए संवाद के आधार पर उस पर मान-हानि का दावा ठोकेंगे | पर निमिषा कुछ भी समझने में असमर्थ थी, वो पूछ बैठी कि कैसा टेप? वी पी सिंह ने कहा कि उन्हें प्रिया द्वारा टेप किए गए तीन ऐसे कैसेट मिले हैं जो निमिषा के विरुद्ध उन्हें कोर्ट में ले जाने के लिए मजबूर कर रहे हैं | निमिषा के भीतर से एक कराह फूटी कि पिछले तीन सालों से उसे वो लड़की टेप कर रही है जिससे उसका अपनापा सा हो गया है | क्या इतना बड़ा छल मात्र बीस बरस की लड़की उसके साथ कर सकती है? पर उसने ऐसा ही किया है | पर क्यों आखिर निमिषा ने उसका क्या बिगाड़ा है? ये कैसा छल है और अगर प्रिया ने ऐसा किया भी है तो आखिर इसकी वज़ह क्या है? और सबसे बड़ी बात कि उन कैसेट्स को उसने वीपी सिंह को आखिर क्यों सौंपा? धीरे-धीरे कड़ियाँ अपनेआप जुड़ने लगीं | प्रिया विजय राव के कहने पर उसे टेप कर रही थी जिसने कि उससे शादी का वादा किया था | पर निमिषा की तो दुश्मनी विजय के साथ भी नहीं थी बल्कि उसने इस वर्ष उसे राखी के दिन बुलाकर उसने उसकी कलाई पर राखी भी बांधी थी | तो ये सारे के सारे इस षड़यंत्र में शामिल थे क्योंकि वीपी

था कि शुक्ल जी भी यहाँ बैठे हुए उस टेप को सुन रहें हैं और हम सब मिलकर इस कैसेट को डीस्क्लोज़ करेंगे - निमिषा उनकी नीचता पर हतप्रभ थी तो उनकी कमीनगी पर हैरान और तो और ये बातें निमिषा से न करके समीर से की जा रहीं ताकि वे परेशान हो जाएँ और घबरा जाएँ जैसे ही निमिषा ने फोन पकड़ा फोन कट कर दिया गया | फिर एक बदली हुई आवाज़ में फोन किया गया जो समीर ने ही रिसीव किया तो, उधर से आवाज़ आयी निमिषा को फोन दे, नहीं तो गर्दन काट के उडा दूंगा-- समीर भय से कांपने लगे पर निमिषा सब कुछ समझ गयी थी, उसने फोन काट दिया था और समीर को समझाया था कि डरने की कोई जरूरत नहीं | न ही किसी का फोन अटेंड करने की जरूरत है|

उसके दो-चार दिनों के बाद ही लगभग सभी अखबार के आफिस से एक ही तरह के फोन आये कि मैडम आपके खिलाफ एक प्रेस मैटर आया है जिसकी लिखावट कुछ इस तरह से है| उनके हिसाब से वो निमिषा को उस जनवादी संगठन से निकालने की घोषणा थी क्योंकि उस पर लगाए गए आरोपों का कोई आधार ना था | उसमें कैसेट का ज़िक्र तक नहीं था बल्कि उनके खुद से गढे गए आरोप थे जो कुछ इस तरह थे –

1. हमारी वाइस प्रेसीडेंट निमिषा सक्सेना का चरित्र व व्यवहार असंदिग्ध है जो संगठन के लिए ठीक नहीं|
2. हमारी वाइस प्रेसीडेंट संगठन के खिलाफ वातावरण तय करने में एक सकारात्मक भूमिका निभाकर संगठन को छिन्न -भिन्न करने के मंसूबों से लैस हैं|

3-निमिषा सक्सेना ने संगठन के सामानांतर एक नया संगठन कायम करने काआपराधिक कार्य किया है अतः हम उन्हें संगठन से निष्कासित करते हैं |

निमिषा से पूछा जा रहा था कि वो इस खबर का क्या करें?निमिषा ने कहा कि आप निकाल दें प्लीज़| अगले दिन सिर्फ “आम पथ” को छोड़कर शहर के सारे अखबार निमिषा के खिलाफ जाने वाली इस खबर से भरे हुए थे | पर इस खबर ने निमिषा को पूरे देश में चर्चित कर दिया और हर जगह इस संगठन की इकाइयाँ निमिषा के पक्ष में युद्ध लड़ने को तैयार हो गयीं| वह बेबात ही हर जगह चर्चित होती चली गयी और सबकी नज़रों का केंद्र -बिंदु बन गयी| धीरे-धीरे निमिषा ज़हर पीने की अभ्यस्त होती चली गयी और मानसिक रूप से परिपक्व भी | उसे अब इस शहर की साहित्यिक गतिविधियों से कोई लेना-देना न था| एक डिटैचमेंट उसके भीतर इस क़दर जगह बनाने लगा की वो इस दुःख से पूरी तरह उबरने लगी थी | उसका मकसद सिर्फ और सिर्फ लेखन था| अब उसकी पहचान राष्ट्रीय स्तर की होती चली गयी| पर इस शहर व यहाँ के लोगों को अपना न बना पाने की तकलीफ अब भी उसे कचोटती थी| यहाँ के लोग अपनी गोष्ठियों और सभाओं में उसे आमंत्रित नहीं करते थे , वह बस खबरें पढती और शहर से बाहर की साहित्यिक यात्राओं में शामिल हो जाती थी| पर इनके कार्यक्रमों में बाहर से आने वाले लोग निमिषा की अनुपस्थिति पर सवाल उछालने लगे थे| ये इनके लिए घाटे का सौदा भी हो सकता था फिर इनके ज़श्न का आनंद भी निमिषा के बगैर आधा-अधूरा रह जाता था अतः वीपी सिंह ने अपने दिमाग का इस्तेमाल किया और निमिषा को दीवाली की बधाई देने के बहाने उससे माफ़ी भी मांग ली कि उन्हें निमिषा को समझने में गलती हुई है | उनका फोन बार-बार निमिषा की मन्नतें करने लगा | उन्होंने उसे विश्वास दिलाया कि उन्होंने संगठन छोड़ दिया है और उसके साथ मिलकर काम करना चाहते हैं | उनके संगठन छोड़ने की खबर जब अखबार में प्रकाशित हुई तो उसने इस घटना को सच मान लिया निमिषा दोबारा उनके बहकावे में आ गयी पर बेहद गुपचुप ढंग से उनका विरोध चलता रहा, उसका रुकना संभव नहीं था| निमिषा ने अपनी पत्रिका की ओर से इसी बीच कई गोष्ठियां कीं और इन्हें ससम्मान अपने यहाँ आमंत्रित भी किया | समीर ने निमिषा के कार्यों के बारे में उन्हें विस्तार से बताया तो सबने खुश होने का नाटक भी किया पर निमिषा की औक़ात को धूल चटाने का सिलसिला जारी रहा, उन्हें निमिषा के बड़े होते क़द को रोकना था और उसके अपमानित भी करना था वीपी सिंह की ईर्ष्या उनके चहरे पर साफ़ झलकती थी, आए दिन उनके द्वारा आयोजित समारोहों में उसे बुलाया तो जाता पर उपेक्षा की लाठी से ही उसका आदर-सत्कार होता|

वो कभी भी मंच पर उसे आमंत्रित नहीं करते न ही उसका परिचय स्थानीय लोगों के सामने रखते | शहर का हर कच्चा आदमी पकाकर पेश किया जाता बस एक निमिषा ही अलग-थलग रख दी जाती| उसके लेखन का ब्यौरा और वास्तविक परिचय कभी भी उन लोगों के सामने नहीं रखा गया जो उसकी कविताओं के दीवाने थे और उसे देखने के लिए आतुर रहते थे|

फिर एक घटना घटी जिसने इस शहर में दुबारा खलबली मचाई | इस शहर के ही एक युवा पत्रकार ने एक दिन उसे पूरे सम्मान के साथ यहाँ से निकलने वाले मुख्य पत्र में जगह दे दी और उसके बारे में सारी डिटेल प्रकाशित करते हुए उसके क़द को एक ऊंचाई सौंपी | ये सत्तासीन गुट फुंफकार उठा,उसके साहस पर,उसकी ईमानदारी पर क्योंकि उसके इस नेक प्रयास ने इनके मंसूबों पर पानी फेर दिया था| शहर के सामने एक बार फिर निमिषा का महत्व बढ़ गया था जबकि ये लोग बड़ी चतुराई से उसे इस शहर से डिलीट करते रहे थे | निमिषा को लेकर ये अन्तरंग गोष्ठियां आयोजित करते जिसमे उसे आहत करने व अपमानित करने के तरीके ढूंढें जाते जो कई बार ये तरीके किसी न किसी के जरिये निमिषा के समक्ष पेश होते और इनकी कलई खुल सी जाती| निमिषा ने इस तरफ ध्यान देना छोड़ दिया था पर एक बार फिर वो इन लोगों से बहुत दूर चली जाना चाहती थी| कभी-कभी लगता कि अगर उन्हें कानून का डर नहीं होता तो वो निमिषा की हत्या भी कर सकते थे कारण सिर्फ निमिषा का महत्वपूर्ण होते जाना था, एक स्त्री का चर्चित होते जाना था ,वो भी उस स्त्री का जो उन्हीं के शहर में वर्षों से रहती चली आयी थी और जिसने आज तक उनका अधिपत्य स्वीकार नहीं किया था, वो उनकी बेमतलब की गुटबंदियों में फंसकर अपना समय बर्बाद नहीं करना चाहती थी और सबसे बढ़कर उनके आधीन न हो सकी थी| और यही वज़ह थी कि वीपी सिंह ने एक बार फिर अपनी सत्ता व ताक़त का इस्तेमाल कर निमिषा को उसकी औक़ात दिखनी चाही और शहर के एक बड़े प्रोग्राम में मूक दर्शक की तरह आमंत्रित किया | मंच पर आसीन लोग वही लोग थे जिनसे पूरी तरह अलग होने का दावा वीपी सिंह हर वक्त करते रहते थे और उन्हें गालियाँ बकते रहते थे कि उन्होंने ही उनको निमिषा के खिलाफ बरगला कर दिशाभ्रमित किया | निमिषा ने वहां जाने से खुद को रोक लिया| वो कार्ड पर छपे नामों की सूची को देख रही थी और सोच रही थी कि क्या इतने लम्बे समय तक कोई ज़हर सिर्फ इसलिए उगला जाता है कि एक औरत की औक़ात व हैसियत का बढ़ना हमारा वर्चस्ववादी समाज कतई नहीं देख सकता| पर उसका सम्मान तो पुरुषों ने ही बढाया है और हर समय साथ देने वाले पुरुष मित्र ही ज्यादा रहे हैं तो फिर ये कौन लोग हैं? शायद इनकी कोई जाति नहीं क्योंकि सामंतवाद भी एक तरह का आतंक है और आतंक की कोई जाति हो ही नहीं सकती| जिन लोगों ने प्रिया (कालेज स्टूडेंट) को इस्तेमाल किया वो आज भी उसी जगह पर खड़े हैं पर प्रिया ने उससे माफ़ी मांगकर अपना जी हल्का कर लिया है| वो अपनी शादी-शुदा ज़िन्दगी में खुश है| निमिषा ने इनके सौंपे ज़हर को अमृत में बदलने का मंत्र सीख लिया है और नीलकंठ बन बैठी है| उसकी आकांक्षाएं उड़ान भरती रहती हैं | उसे इस देश व समाज के लिए बहुत कुछ करना है, बहुत कुछ लिखना है| क्या पूछा आपने कि मैं कौन हूँ? तो चलिए सुन ही लीजिये---मैं ही निमिषा की सब कुछ हूँ | उसकी सहेली, उसकी हमदर्द और उसका सबसे आत्मीय रिश्ता |

❊

रंजना श्रीवास्तव , संपादक- सृजनपथ
श्रीपल्ली, लेंन न-२, पी ओ-सिलीगुड़ी बाज़ार
सिलीगुड़ी (प बंगाल) -734005,
मोबाइल-09933946886

उस वक्त भी अक्सर तुझे हम ढूँढने निकले |
जिस धूप में मज़दूर भी छत पर नहीं आते |

❊

हम गाँव में जब तक रहते थे ये सब मंज़र मिल जाते थे
दो-चार कुँए मिल जाते थे दस-बीस शजर मिल जाते थे
(ग़ज़ल गाँव से) **- मुनव्वर राना**

लेख : अर्चना चतुर्वेदी

मीडिया में प्रेम और आज की नारी

"प्रेम" ये सिर्फ एक शब्द नहीं है ,ये तो वो अहसास है जो दिल से महसूस किया जाता है |, जो हर इंसान के दिल के किसी न किसी कोने में बसा होता है।

प्रेम सबसे बड़ी ताकत है..... मुर्दे में जान डाल दे ऐसे चमत्कारी शक्ति से पूर्ण है प्रेम | प्रेम स्त्री पुरुष के बीच होने वाले आकर्षण का नाम नहीं है..... प्रेम ह्रदय से पैदा हुआ निःस्वार्थ भाव है ..... जो कुछ न पाने की आकांक्षा से किसी और के प्रति प्रकट किया जाये ..... प्रेम के मायने क्या हैं, इस पर सदियों से विचारकों, लेखकों व अन्य लोगों ने अपने-अपने तर्क प्रस्तुत किए हैं। प्रेम क्या है? इस प्रश्न का उत्तर प्रेम करने वाले भी पूर्णता के साथ नहीं जान पाते हैं। इसका कारण यह नहीं कि उन लोगों ने सच्चा प्रेम नहीं किया होता है बल्कि प्रेम है ही ऐसा जिसे न तो भावनाओं की सीमा में बाँधकर मनमाफिक रूप दिया जा सकता है और न ही रिश्तों व संबंधों के अनुरूप नाम दिया जा सकता है। प्रेम का अर्थ व स्वरूप हर पीढी में, हर युग में बदला है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में आये बदलाव भारतीय संस्कृति व सभ्यता पर चोट करते हैं। पाश्चात्य व उपभोक्ता संस्कृति के कारण प्यार की निश्छलता व पवित्रता प्रभावित हुई है।

आज की शिक्षित और आत्मनिर्भर युवा स्त्री को अपनी व्यक्तिगत आजादी इतनी पसंद है कि वह उसे किसी भी कीमत पर, यहां तक कि प्यार पाने के लिए भी खोना नहीं चाहती। पिछली पीढी की स्त्री की तरह वह प्यार में अपना सर्वस्व त्यागने को तैयार नहीं है। अब उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व है, उसकी अपनी पसंद-नापसंद, रुचियां और इच्छाएं हैं। उसे अपनी पसंद का साथी चुनने की पूरी आजादी है। ऐसी स्थिति में उसके पास विकल्पों की कमी नहीं है। उसके पास अपने आप को बदलने की कोई वैसी मजबूरी भी नहीं है, जैसी कि उसकी पिछली पीढी की स्त्रियों की हुआ करती थी कि एक बार किसी पुरुष के साथ शादी या प्रेम के बंधन में बंध जाने के बाद उसके पास अपने साथी अनुरूप खुद को ढालने के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं होता था। पर आज वक्त के साथ स्थितियां तेजी से बदल रही हैं। ऐसा नहीं है आधुनिक युवती अपनी शर्तो पर प्रेम करती है और अपने प्यार की खातिर खुद को बदलने के लिए जरा भी तैयार नहीं है। आज भी प्रेम के प्रति उसका समर्पण कम नहीं हुआ है। फर्क सिर्फ इतना है कि आज उसकी जीवन स्थितियां उसके अपने नियंत्रण में हैं, वह जिससे प्यार करती है, उसके लिए वह कुछ भी करने को तैयार है लेकिन वह अपनी निजी स्वतंत्रता को बरकरार रखना चाहती है। इसलिए उसे प्रेम दांपत्य संबंध के मामले में भी थोडे पर्सनल स्पेस की जरुरत महसूस होती है | शायद ये पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित आधुनिक सोच का ही नतीजा है | जिसके अंतर्गत इंसान अपने जीवन में किसी की

दखलंदाजी पसंद नहीं करता ,फिर चाहे वह प्रेमी या जीवन साथी ही क्यों ना हों | भारतीय स्त्री भी इस विदेशी संस्कृति के इस प्रभाव से अछूती नहीं है। वह जिससे प्रेम करती है, उससे इस बात की उम्मीद रखती है कि वह उसकी व्यक्तिगत आजादी की भावना का सम्मान करे |

पुराने लोग कहते हैं कि .....इस कलयुग में प्रेम ? सच ही कहते हैं वो कम्प्यूटर के युग में जीने वाले लोग क्या जानेंगे कि प्रेम क्या है। आज के युवक-युवतियां के समक्ष मीडिया ने प्यार को कुछ इस तरह से प्रदर्शित किया है कि प्रेम खूबसूरती, सेक्स व धन-वैभव के आस-पास भटक रहा है। प्रेम का अर्थ व स्वरूप हर पीढी में, हर युग में बदला है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में आये बदलाव भारतीय संस्कृति व सभ्यता पर चोट करते हैं। पाश्चात्य की उपभोक्ता संस्कृति के कारण प्यार की निश्छलता व पवित्रता प्रभावित हुई है। सभ्यता, सौम्यता और मर्यादा के घेरे में रहने वाला प्रेम आज सार्वजनिक व दिखावटी हो गया है। आज प्यार में शर्म और लज्जा समाप्त हो गई है। आज के युवक-युवतियां प्रेम नहीं करते, प्रेम और प्यार का नाटक करते हैं, अपनी किसी जरूरत या मतलब की खातिर। और मतलब निकल जाने पर प्रेम का अध्याय वहीं समाप्त हो जाता है। फिर शुरु होता है एक नया अध्याय। पहले प्यार में स्नेह होता था, अब स्नेह का स्थान सेक्स ने ले लिया है। यदि हम मीडिया में प्रेम की बात करे, तो प्रेम सिर्फ फिल्मो में, नाटकों में और लेखन में रह

गया है |
मीडिया में तो सिर्फ वासना है, वहां दिल के मिलन, प्यार के अहसास के लिए कोई स्थान नहीं है |
वहां तो सिर्फ देहराग रह गया है| मीडिया परोसता है,— प्रोफ़ेसर मटुकनाथ और जूली के प्यार को,मीडिया बढ़ावा देता है होमोसेक्स्सुअल और लेस्वियन को | क्यों हमारा मीडिया ऐसी बातों को ज्यादा परोसता है? जो हमारी सस्कृति के खिलाफ है,हमारे संस्कारो के खिलाफ है,
क्यों? हम नेताओं और फ़िल्मी हीरो का स्टिंग आपरेशन टीवी पर दिखाते हैं ? क्यों? रेम्प पर एक मोडल का ड्रेस जब गिर जाता है तो हम दिनभर उसी को दिखाते हैं |
औरत की देह इस समय मीडिया का सबसे लोकप्रिय विमर्श हो गया । सेक्स और मीडिया के समन्वय से जो अर्थशास्त्र बनता है उसने सारे मूल्यों को शीर्षासन करवा दिया है ।
हमारे 'गोपनीय विमर्शों' को'ओपन' करने में मीडिया का एक खास रोल है। पहले की नायिका पूरे वस्त्र पहन कर दिखती थी | आज की नायिका बिकनी पहनती है | अंतरंग दृश्य के बिना फिल्म तो क्या टीवी के नाटक भी पूरे नहीं होते | इतना ही नहीं मीडिया में जो कुछ भी दिखाया जा रहा है ,वो सिर्फ वही तक सीमित नहीं है | जो लोग मीडिया में काम कर रहे हैं या काम करना चाहते हैं , वो भी इस सबसे गुजर कर वहां पहुँचते है | पर्दे के आगे की जिंदगी की चमक दमक का असर पर्दे के पीछे की जिंदगी पर कुछ कम नहीं होता |
मीडिया में कुछ प्रचलित शव्द हैं जैसे – कोम्प्रोमाइज, गिव एंड टेक और कास्टिंग काउच ...मतलब सबके एक ही है | यदि आपको अपना काम करवाना है तो बदले में क्या दे सकते है | यदि काम करवाने वाली औरत है तो वो बदले में क्या देगी ? प्रोडूसर और डाईरेक्टर का बिस्तर ही गर्म करेगी | ये आज हम सब जानते है|
कुछ साल पहले दिल्ली दूरदर्शन में रेड पड़ी थी और डाइरेक्टर के कमरे की दराज से कोंडोम और अश्लील वस्तुएं बरामद हुई | इसका सीधा मतलब तो यही निकलता है, कि महिला प्रोडूसर अपनी फाइल पास करवाने के लिए अपना बदन रिश्वत के तौर पर देती थी | आज भी मिनिस्टरी से अपना प्रोग्राम पास करवाने के लिए यही सब होता है | पुरुष प्रोडूसर किराये की लड़कियां तक भेजते हैं | ये सब खुलेआम धड़ल्ले से हो रहा है |
लेकिन मीडिया की एक खासियत जरुर है ,यहाँ बलात्कार या जबरदस्ती सम्बन्ध नहीं बनाए जाते | यहाँ तो महिला वर्ग जल्द तरक्की पाने के लिए खुशी खुशी खुद को परोस रही है |
उन्होंने अपनी देह को तरक्की का जरिया बना लिया है | औरतों के बारे में यदि मुझसे पूछा जाए तो, मेरी सोच यह है औरत बिना प्रेम के समर्पण नहीं कर सकती | औरत अपना बदन किसी ऐसे इंसान को नहीं छूने देगी जिसे वो प्यार नहीं करती | लेकिन मीडिया में नौकरी करके मुझे पता लगा की वहाँ मेरी सोच बहुत पुरानी है ,ऐसी सोच का जमाना खत्म हों चुका है जब औरत प्रेम में समर्पित होती थी |
आज की औरत तो एक समय में कई पुरुषों को खुश करके अपना उल्लू सीधा कर रही है |
शुरू के दिनों की बात है मैंने एक Production studio में पहली नौकरी की थी | वही पर एक दिन एक
डाईरेक्टर ने दूरदर्शन के नाटक के लिए आडीशन रखे थे | एक लड़की मेन लीड करना चाहती थी,वो सबके सामने ही बोली .....सर मुझे ये रोल चाहिये, बताइए रात को कहाँ आ जाऊ | डाईरेक्टर साहब सकपकाए तो वो बोंली , 'सर जमाना गिव एंड टेक का है आप मुझे मेरा मनपसंद रोल दे दीजिए, में आपको खुश कर दूंगी | वहां बैठे सब लोगों की गर्दन शर्म से झुक गयी थी |
मीडिया की दुनिया में आपका दो खास किस्म की औरतों से वास्ता पड़ता है ,एक ....जो सिर्फ अपने अधिकारों के लिए जीती हैं,जो तरक्की के लिए यह भूल जाती हैं कि वे औरत हैं, और औरत का जामा पहने, औरत होने के तमाम हथकंडे अपना कर किसी तरह मुकाम पर पहुचना चाहती हैं , और दूसरी वे हैं, जो इस अनूठी प्रजाति को करीब से देखकर भी खुद को समेटे रखती है | इनके लिए सफलता से ज्यादा इनका औरत होना अहमियत रखता है , और औरतपन को बचाए रखना जरुरी | इनके लिए सफलता की राह कंकड और कांटे वाली पगडण्डीयों से होकर गुजरती है |
ये सब पहले बोलीवुड तक इलेक्ट्रोनिक मीडिया तक सीमित था लेकिन आज तो प्रिंट मीडिया में भी खुले आम बदन परोसे जा रहे हैं | औरतें ये सोचती है कि वो पुरुष को छल कर अपना काम निकाल रही है | लेकिन सही मायनो में देखे तो औरत खुद को ही नीचे गिरा रही है ,वो खुद ही छली जा रही है | ये भी सच है कि इस तरह अपने औरतपन को हथियार बनाने वाली औरते कम ही हैं, लेकिन इस तरह तो वो बाकी औरतों के रास्ते और मुश्किल कर रही है | क्या इन औरतों में अपनी काबिलियत के बल पर आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं है ? शायद इसीलिए ये शोर्टकट लेती हैं |
अब तो साहित्य में भी इसने पांव पसार लिए हैं |
बड़े बड़े साहित्यकारों को भी सेक्स और औरत की देह के बारे में लिखने में मजा आ रहा है खासकर राजेन्द्र यादव जी को | हंस के जरिये वो स्त्री पुरुष सम्बन्धों पर आधारित अश्लील कहानियों को धडल्ले से छाप रहे हैं |
यदि हम पुराना साहित्य जैसे धर्मवीर भारती की "गुनाहों का देवता" पढ़ें तो प्रेम के अलग ही मायने समझ में आयेंगे | शरतचंद की रचनाओं का प्रेम आज कही नहीं मिलता | आज तो प्रेम ही नहीं साहित्य के भी मायने बदल गए है |
बड़ी बड़ी साहित्यक किताबों में भी अश्लील कहानियों को जगह मिल रही है | और तो और प्रेम और सेक्स पर खुलेआम सबसे ज्यादा महिलाएं ही लिख रही हैं | शायद तस्लीमा नसरीन से प्रेरणा ले रही है |
कम से कम महिला लेखिकाएं तो इसको बढ़ावा ना दे| जब हम खुद अपनी देह अपनी भावनाओँ की कद्र नहीं करेंगे तो पुरुषों से क्या उम्मीद रखेंगे |
ये सही है की हम तरक्की कर रहे है ,हम मार्डन हों रहे हैं लेकिन इसका मतलब ये तो नहीं है की हमारे लिए प्रेम के मायने ही बदल जाएँ | क्या हमारे मीडिया की कोई सामाजिक जिम्मेदारी नहीं है, क्या साहित्यकारों को हमारे

समाज हमारे संस्कारो से कोई लेना देना नहीं है | हम जोर शोर से कहते है कि नई पीढ़ी में सम्वेदना नहीं है, वो प्रेम के मायने नहीं जानती | नई पीढ़ी तो वो ही सीख रही है, जो वो फिल्मो ,टीवी,अखवार और किताबों के जरिये देख या पढ़ रही है | हम क्या दे रहे है, अपनी आने वाली पीढ़ी को |

हमारे लेखक खुद को सही साबित करने के लिए ये भी कहते है कि "साहित्य समाज का दर्पण' है | कुछ हद तक ये सही भी है, लेकिन क्या हमारे समाज में सच्चा प्रेम ,सच्चे लोग ,चारित्रवान लोग बचे ही नहीं है? पर हम अपने समाज की अच्छाई नहीं दिखाते, हम सिर्फ बुराई परोसते है | बुराई तो बैसे भी जल्दी फैलती है |तो क्या हमारे मीडिया की जिम्मेदारी नहीं है कि वो बुराई के बजाय अच्छाई को
दिखाए |

क्यों हम अखबार में पूनम पांडे का नग्न चित्र छापते हैं |

सीधी सी बात है लोग इसका विरोध नहीं करते |बल्कि उन्हें तो मजा आता है ,जो बिकता है वही दिखाया
जा रहा है |

रही आज की नारी तो कुछ औरतें तो सिर्फ यह याद रख रही है कि वो औरत है, खुद को मेनका बनाने पर तुली हुई हैं | ये मेनका टाइप औरतें जिस क्षेत्र में जाएँगी अपने जिस्म को ही इस्तेमाल करेंगी चाहे वो एल आई सी एजेंट हों , लेखिका , हिरोइन या किसी चेनल की समाचार वाचिका |

जैसे पूनम पांडे कितने दिनों से तड़प रही थी कपड़े उतारने के लिए |

अंत मैं , में तो भगवान से यही दुआ करुँगी कि वो इस देश और इसके वासियों को इन मेनकाओ से और अश्लीलता परोसने वालों से बचाए |

❊

अर्चना चतुर्वेदी
बी ४५ सेक्टर २३ नॉएडा
उत्तर प्रदेश 201309

गज़ल

खोल दो अब द्वार प्रेयसि, प्रात का
मुक्त हो बन्दी अभागिन रात का |
जानता हूँ किस लिए बिखरा तिमिर
क्योंकि खिलता था हृदय जलजात का |
तप्त है ज्वर से उजाले का बदन
उष्ण है स्पर्श तेरे गात का |
प्रीत की वह रीत पिछली भूल जा
यह नहीं अवसर निठुर आघात का |
कौन कहता है कहानी प्यार की,
वह तुम्हें उत्तर तुम्हारी बात का |

- रघुवीर सहाय

(दूसरा सप्तक-सं. अज्ञेय)

गीत : कवन आचार्य

बीते लम्हें

बीते हुए लम्हें नहीं भूल पाते
कुछ लोग ऐसे भूले नहीं जाते .....
यादे हमेशा याद आती हे ....
बाते हमेशा याद आती हे ....

यादों की बारात लेकर चले हम,
सपने सजाने निकल पड़े हम ,
यादे हमेशा याद आती हे ....
बाते हमेशा याद आती हे ....
बीते हुए लम्हें ....

कुछ रिश्ते ऐसे जिसे हम निभाए ,
कुछ लम्हे ऐसे ना भूल पाये ,
यादे हमेशा याद आती हे ....
बाते हमेशा याद आती हे ....
बीते हुए लम्हें ....

❊

'अनुवन' , 2, पार्थ नगर , दाल मिल के पीछे,
सुरेन्द्रनगर – 363 001 (गुजरात)
मो. 09033344634

समीक्षा : संतोष श्रीवास्तव

कोमल अनुभूतियों का साक्ष्य

गज़ल विधा में हिन्दी की शायरा बहुत कम है, जब कि उर्दू में कविता विधा में कई कवयित्रियाँ हैं, यह धारणा अक्सर फैलती सिमटती रहती है | चूँकि उर्दू का ज्ञान सीमित दायरे तक ही महिला शायर, गज़लकार को है सो बात भी सही नज़र आती है| **शिल्पा सोनटके** का संग्रह **"पांचवा मौसम"** जब मैंने पढ़ा तो लगा यह नाम तेज़ी से गज़ल की दुनिया में प्रवेश कर रहा है | " दिल से दिल तक जाने वाली कई राहों से गुज़रकर आशा और निराशा के मुहाने जा बैठीं या किसी चकाचौंध महफ़िल के एक कोने में प्यार की खामोश शमा जलाए बैठीं" ये रचनाएँ किसी व्यक्ति विशेष की कहानी नहीं कहतीं बल्कि उन भावनाओं को अभिव्यक्त करती है जिनमें हर दिल को किसी न किसी रूप में निस्बत हो सकती हैं. " शिल्पा ने इस संग्रह का नाम " पांचवा मौसम" इसलिए रखा कि वे मन के मौसम को पांचवा मौसम मानती हैं...

बदलते परिवेश में कविता के धर्म को निभा पाना जटिल और चुनौती भरा है | ऐसे में शिल्पा जी की कविताएँ अचरज में डाल देती हैं| इनमें न तो अकल्पनीयता है, न बड़े-बड़े बोझिल शब्द, वो मासूमियर से कहती हैं—

कोई विवाद नहीं कोई दावा भी नहीं
आरजुओं की ये महफ़िल है
जहाँ बैठे दीवाने बहाल जाते है
और परवाने जल जाया करते हैं

इस पांचवे मौसम को मन को पूरी तरह छू लेना है, शिल्पा जी की यह कोशिश हर पंक्ति की गवाह है तो साहित्य से गहरे सरोकारों को भी रेखांकित करती है कहीं शिल्पा जी के स्वप्न भंग की पीड़ा है और कहीं आशा का दामन न छोडने का कारण भी

जीवन की जटिलताओं को बहुत मार्मिक होकर कहना उनकी खासियत है

खुशियों का दिल हमने न यूँ तोड़ा होता
काश, कभी तो गम ने हमें तनहा छोड़ा होता

एक अन्य शेर में वे कहती हैं—

फिर भी लगी है चोट, किस्सा अजीब ये
कांटो से बचाते कदम फूलों पे जा गिरे थे हम

और इसी तन्हाई, गम और चोट को लिये उनका मन अथाह प्रेम से भर उठता है प्रेम की तड़प, महबूब की बरूखी और समाज की बेतुकी धारणाएं... अजब हिसाब है शिल्पा जी के शिल्प का-

कांच के सपने सा टूटी हूँ कई बार
हर इक चुभन में ख्वाब झनझना गये है

इन शेरों में बेताबियाँ हैं, तो ख़्वाबों का टूटना भी है और दिल के अरमानो की पीड़ा भी है वे कहीं छंदबद्ध हैं तो कहीं छंदमुक्त. लेकिन उनका छंदमुक्त होना भी लयबद्धता को लिये चलता है | शिल्पा जी ने पांचवा मौसम बनाकर पूरे ब्रह्माण्ड में कुछ इस तरह रचा बसा दिया है कि ज़िंदगी जब जहाँ भी रुके, ठहरे, प्रेम, बस प्रेम को ही पाती है - **हर मकाम हर रहगुज़र में तू ही तू / घर की हर शै में बसाया है तुझे /खुश्बूओ सा महकता सांसो में है / हाथों में मेंहदी सा रचाया है तुझे**

वो जिस प्रेममय संसार को कविता का हिस्सा बना रही है बो महज़ उसकी दर्शक नहीं बल्कि सदस्य है उसकी | करुणा को आत्मीयता से छू लेना और प्रेम के संकरे रास्ते से गुज़र जाना इन कविताओं की खासियत हैं - **"भेज कोई मौसम की निशानी या / दिल पे लिखी कोई कहानी भेज / खत लिखना तुझे गवारा न सही / बादलों के संग कुछ मुंहज़बानी भेज / थम से जाते हैं लम्हें कभी / कभी, चलती रहे जिन्दगी इतनी तो रवानी भेज/"**

और प्रेम गली अति सांकरी से गुज़रते हुए वे इस दौर की हकीकत भी बयां कर डालनी है -

"बेमतलब अपनाता नहीं कोई / तकें ताल्लुत पे आंसू बहाता नहीं / यह सुविधावादी दौर है झूठ का यहां झूठों को मनाता नहीं कोई."

कहीं भी शिल्पा चौंकाती नहीं बल्कि एक-एक पल को स्वयं जीती हुई बयां कर डालती है | उनकी सारी जद्दोजहद पीड़ा के रास्ते से जुडी है पर वे उस पीड़ा को.. ' दुःख तो अपना साथी है' की तर्ज पर आत्मसात करती संगिनी बनाती चलती है. प्यार के मापतौल में पहले अपनी ही अनुभूतियों को खंगालना, तह तक पहुंचना... सतह के ऊपर की परत को उघाडने से कहीं अधिक चुनौती भरा है |

चलो मरहम तलाशें, टूटे पर और उम्मीदों के वास्ते,
पंछी अपनी परवाज़ भूले ये तो मुमकिन नहीं.

वे जिन्दगी की सच्चाईयों रूबरू होने के बावजूद एक क्षण को भी प्रेम को अपने से विलग नहीं होने देतीं | प्रेम की अनुभूतियों के विविध रूप, विविध क्षण, विविध रंग इस संग्रह में अंकित हैं | यह प्रेम तमाम दुनिया को अपनी परिधि में समेटता है | संयोग और वियोग में विचरण कराता है| यही तो है जिन्दगी का आदि और अंत... वह निज से लेकर जग तक और लौकिक से लेकर अलौकिक तक कितने रूप ग्रहण कर सकता है |

ये कविताएँ, गज़लें, शेर इसका बोध कराते हैं | वैसे कविता और प्रेम एक दूसरे के पर्यायवाची है | प्रेम ही तो कविता की प्रेरणा भूमि है, रूप कोई भी हो | शिल्पा जी अपनी अनुभूतियों को शब्दों में ढाल पाठकों के दिलों तक पहुँच जाती है | इसमें संदेह नहीं |

❊

204, केदारनाथ को हाउसिंग सोसाइटी, सैक्टर -7,
निकट चारकोप बस डिपो कॉंदिवली (प),
मुम्बई 400067

प्रकृति वर्णन : डॉ. बसंत मिश्रा

प्रकृति का फलसफा है - बांधवगढ़

इंसानी बसाहट में सिक्कों की खनक का बढ़ता शोर, इस खनखनाहट के सम्मोहन में खनक को छू लेने की दीवानगी और इस दीवानगी में शर्मसार होते रिश्ते-नाते, मैं थक जाता हूँ, व्याकुल हो उठता हूँ | इंसानी जिदंगी की झूमा-झटकी देख-देख तो भागता हूँ अपने दोस्त कैमरे के साथ और तलाशता हूँ सुकुन वहाँ, जहाँ हर पल सिर्फ अपनापन लुटाया जाता है। पग-पग पर भाईचारें की नई मिसालें बनती है, जहाँ चंपई उजाले में अलसाई भोर ओस की बूंदों से नहा बन-संवरकर अपनों की प्रतिक्षा करती है | जहाँ सुरमई अंधेरें की ओट में सांझ अपने प्रियतम से मिलने को आतुर है। यकीन कीजिये यह कल्पना नहीं है ,हकीकत है ,ऐसी जन्नत की जिसे बांधवगढ़ कहते है।

मैं बात कर रहा हूँ बांधवगढ़ नेशनल पार्क की जो उमरिया जिले की पहचान और मध्यप्रदेश की शान है। जबलपुर शहर से 190 कि.मी. दूर स्थित बांधवगढ़ जो कभी सफेद शेरों के लिये जाना जाता था, महाराजाओं की शिकारगाह था, अब बाघों के लिये पहचाना जाता है। मैं पेशे से फाटोग्राफर लेकिन दिल से प्रकृति प्रेमी हूँ, वन्य जीवों की ओर हमेशा आकर्षित होता मैं इन जीवों को पहचानने की इंसानी भूलों से अक्सर आहत होता हूँ, इनके बीच रहना,इन्हें समझना, साथ-साथ इन मूक जीवों से जिंदगी का फलसफा समझना मुझे हमेशा लुभाता हैं | जब मौका मिलता है, कैमरा उठा आ जाता हूँ ताल गेट | यहाँ आकर अपने को अपनों के बीच पाता हूँ |यह सुखद एहसास भला कभी शब्दों में बयां हो पायेगा ? आना पड़ेगा आपको यहाँ, दिल-दिमाग पर छा जाने वाले इस सुरूर को पाने। ताल गेट पर आते ही नन्हीं मौरैया इंडियन रोलर (नीलकंठ), जंगल बाबलर आदि फुदक-फुदक कर "पैर पखार" पालागी करती हैं। उल्लूओं और गिद्रों का झुंड अपनी पैनी नजर से घर आये मेहमान की पड़ताल करते हैं| पड़ताल भी ऐसी कि मेहमान को पता नहीं लगता | वह तो हिरणों के छौनों को दुलारने में व्यस्त रहता हैं | ये छौने जरा सा सिर घुमा कर मेहमान को देखते हैं, डरकर माँ की ओट में दुबककर कहते हैं , "माँ चल न देख तो कोई आया है ।" ठीक ही जैसे गांव का डरा सहमा बालक दरवाजे की ओट से घर आये अपरिचित की देख सहम कर चौका बरतन कर रही अपनी माँ के पल्लू से छिप कर खड़ा हो जाता है।

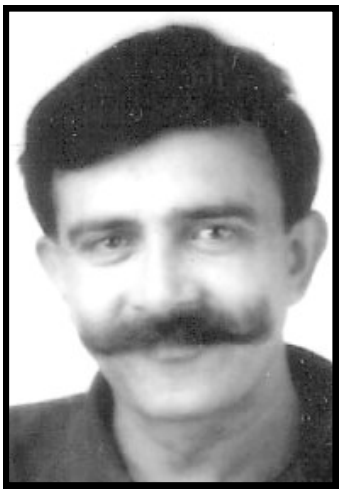

मेरी जिप्सी थोड़ा आगे सरकती है, लंगूरों की नटखट टोली जिप्सी के सामने खड़ी शरारती मुस्कान से कहती है, 'तो भैया आ गये हमारे घर अब हमसे बचकर कहाँ जाओगे"। इतने में टोली का मुखिया उन्हें घुड़ककर कहता हैं "नही घर आये मेहमान के साथ कोई शरारत नही" सुनते ही टोली नदारद। सांभर, नीलगाय,चीतल,मोर सभी अपने-अपने अंदाज में मेरा स्वागत कर रहे थे | मैं जिप्सी में बैठा, ऊचें नीचे, ऊबड-खाबड रास्तों से गुजरता| कभी महुआ अर्जुन, पीपल, पलाश, बरगद के गांभीर्य को सहेजता ,तो कभी बेर, कनेर, करौदे की चपलता को समेटता, कभी ऊंचे- ऊंचे दरख्तों के औदार्य और दृढता को पढ.ता तो कभी कंटीली झाड़ियों और लताओं में जिंदगी का पाठ पढ़ता। अकूत हरियाली, रंग - बिरंगे पुष्पों और लुभावनी तितलियों में जीवन के रंगो को समझता मैं चक्रधरा पहुँच गया | यहाँ मुनि की जटाओं की तरह सफेद, शांत गंभीर ऊँचे- ऊँचे घास जो दूर तक फैले थे| अनेक वन्यप्राणियों की तपस्थली लग रहे थे, लग रहा था मानो बाध और अन्य वन्यप्राणि यहाँ तपस्या कर मोक्ष की कामना करते हैं।

जिप्सी का ड्रायवर सलीम हास परिहास के बीच अपने अनुभव मुझसे बांटता हुआ कुशलता से आगे बढ़ते हुये " सीता मंडप" की घाटी पर ले गया। सीता मंडप के मनोरम दृश्य बांधवगढ़ की रानी सीता (शेरनी) की समृद्धि और ऐश्वर्य की कहानी कह रहे थे | बीचों-बीच मौजूद काली शिला, गवाही दे रही थी, कि इंसान और बाघ का नाता निश्चित मयार्दा में ही फलता फूलता है |नही तो सीता की ही तरह दम तोड़ता है, इस जंगल में "सीता" और "चार्जर" के वंशजों का ही शासन है। ऊँचे- ऊँचे टावरों के जरिये मेहमान और मेजवान अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं| वन विभाग के अमले की ईमानदारी और समर्पण को प्रणाम करते, प्रकृति का लाड़ पाते हम पहुँच गये "शेष शय्या" पर जहाँ भगवान विष्णु की की कल्चुरी कालीन शेषनाग पर लेटी विशाल प्रतिमा है ऊपर ऊँचा पहाड़ उस पर से बहता झरना प्रतिमा के ठीक नीचे कुंड में गिर रहा था | मैंने जिप्सी से नीचे उतर झरने के स्वच्छ अमृत को अंजुलि में भर पिया पूरे शरीर पर औषधी की तरह उसे लगाया आप समझ सकते हैं मेरी मनोदशा। मरूस्थल में भटके मुसाफिर को जल मिल जाने पर जिस परम तृप्ति का एहसास होता है ऐसा ही सुखद एहसास था वो। उपर से नीचे आते समय राजा की सल्तनत की सुरक्षा व्यवस्था में तैनात सिपाही और खुफिया विभाग के अफसर तेदुयेंजी (लेपर्ड) से हमारी मुलाकात हो ही गई |

अभी तक मैं समझ रहा था कि डयूटी अफसर शायद सपरिवार कहीं छट्टियाँ बिताने गये है | चलो अच्छा ही हुआ मैं बिना सुरक्षा जाँच के जल्दी ही शेर राजा के दर्शन कर लूंगा, लेकिन जंगल के नियम इंसानों की तरह तोड़ने के लिये नहीं बनते | तेदुये जी ने हमें देखा, परखा और संतुष्ट होने पर हमें छोड़ा, हमने राहत की सांस ली। गाड़ी ने झटका लिया और चल पड़े जंगल व्यवस्था को आत्मसात् करते हुये।

पत्तों की खड़खड़ाहट से मेरी तंद्रा टूटी, देखा तो सामने से हाथी दादा सूढ़ से रास्ते की सफाई करते बढ़ते चले आ रहे थे | उनके पीछे तीन और हाथी अपने-अपने महावतों के साथ, सामने वाले हाथी दादा काफी बुजुर्ग और अनुभवी जान पड़े, उनका महावत भी गठीली काठी, चमचमाते सफेद दांत चेहरे पर मुस्कान और आत्मसंतुष्टि का भाव, जी हां यही पहचान है सीनियर महावत कुटप्पन जी की |इन्हीं की बदौलत वन विभाग और हम सभी को इत्मीनान हैं कि जंगल में सब सकुशल है। बाघों के वर्चस्व और अस्तिव की लड़ाई हो या जंगल में शिकारियों के आमद की शंका, अवैध जंगल कटाई हो या फिर सामराज्य में नन्हे मेहमान के आने की सूचना, सभी कुछ तो हाथियों और महावत पर निर्भर है| जंगली दुरूह रास्तों पर जहाँ सूर्य की रोशनी भी नहीं पहुंचती, वहाँ से अच्छी बुरी खबरे लाकर व्यवस्था को सुचारू रखने के इनके जज्वे को सलाम और नमन है कुटटप्पन की फोटोग्राफी को, जो साधनों के अभाव में इस जंगल में ट्रांसपेरेंसी डेवलप किया करते थे।

पहली बार इनकी उत्कृष्ट फोटोग्राफी को 'सेन्ट्रल इंडिया फोटोग्राफी कौंसिल'(सी आई.पी.सी.) जबलपुर ने प्रशस्ती पत्र देकर सराहा। परिवार के मुखिया की तरह ही अनुभवी और कर्मठ हाथियों की सेहत तथा सम्मान की जिम्मेदारी का निर्वहन भी वन विभाग बखूबी करता है, इन्हें जंगल में बने कैंप में लाकर, सफाई, आराम व पौष्टिक आहार की व्यवस्था होती है | मिश्रित अनाज से बनी रोटियाँ खिला इनके शरीर की विटामिन और मिनरल की जरूरत को पूरा किया जाता है। कैंप में मानव और वन्य जीवों का सौहार्द, भाईचारा, एक दूसरे का पूरक बनने का प्रयास, शांति और संतुष्टि सभी कुछ मुझे इतना सम्मोहित कर रहा था कि मैं बस आंखे फाडे देखता ही रहा उस वक्त तक, जब तक की सलीम ने आवाज देकर आगे चलने के लिये नहीं कहा। ईश्वर ने आज का दिन तो मेरे असीम आनंद के लिये ही चुना था | मेरी तो कल्पना में भी नहीं था कि राज्य की चाकचौबंध व्यवस्था और सुखी प्रजा का हाल जानने आज महाराज स्वयं अपने गुप्तचरों के साथ निकले हुये हैं।

हुंआ यूं कि हाथियों के कैंप से तकरीबन दस मिनिट तक चलने के बाद अचानक बांधवगढ़ नेशनल पार्क के महाराज "बी टू" हमारी जिप्सी के बांयी तरफ से अपनी गर्वीली और राजसी चाल से चलते हुए पूरे राजसी ठाट-बाट से सड़क पर आ गये। दोनों तरफ की गाड़ियों के पहिये जहाँ के तहाँ थम गये। मैं और मेरे जैसे कई जंगल प्रेमियों की सांसे थम गई कुछ भयभीत हुये होंगे, और कुछ प्रसन्न लेकिन मैं भय और खुशी के अलावा आश्चर्यचकित भी हुआ क्योंकि बाघ जब चलता है तो जंगल में हिरन,सांभर और बंदर अपने विशेष तरीके से एक दूसरे को सर्तक करते हैं इसे "अलार्म कोल" कहते है परन्तु इन महाशय की सवारी निकलने पर कोई कोल नहीं थी। राजा ने हमें न तो देखा ना ही हमारा हाल जानने की उत्सुकता दिखाई, बस शान में आगे बढ़ते गये |मैं देख रहा था,जहाँ से वे गुजर रहे थे वहाँ रास्ता खुद व खुद साफ होते जा रहा था| झींगुर,चिडिया जैसे छोटे जीव भी एकदम शांत थे। महाराज की शान में गुस्ताखी करने का साहस किसमें था ? भरा चेहरा, चौडा माथा, पुष्टशरीर, मजबूत कंधे, चमकदार पीली और काली पट्टियां लंबी पूंछ पर क्यों उन्हें गर्व न हो? मैं मायूस हुआ माना वे साहसी बलवान और यहाँ की अकूत संपदा के स्वामी है लेकिन इन्हें दंभी कतई नही होना चाहिये। महाराज ने दर्शन दिये मेरा सौभाग्य लेकिन इंसानों का क्या कोई वजूद नहीं जो इन्होंने मेरी तरफ देखा भी नहीं। फिर तसल्ली करने लगा कि शायद राजा ऐसे ही होते होंगें, इतने मैं पीछे बैठे गाइड रघु ने बताया कि साहब बी टू महाशय की गर्दन अधिक मोटी है इसके वजन के कारण ये अपना सर ऊपर नहीं उठा पाते और किसी भी जानवर से इनका आई कांटेम्ट नहीं हो पाता, जब तक बाघ से जानवर का आई कांटेक्ट नहीं होता,जानवर भयभीत नहीं होता और वह सिर्फ सुरक्षित स्थान पर खड़ा हो बाघ का रास्ता साफ कर देता है इसी कारण बी टू जब निकलता है तो कोई अलार्म कोल नहीं होती। मैं सुनकर मुस्करा पड़ा और यकीन के साथ कह सकता हूँ जब इन पक्तियों को पढ रहे होगें तो बी टू जी के सीक्रेट पर मुस्करा रहे होगें। बाघों की अपनी दुनियाँ है ये अत्यंत सभ्य और शालीन है शेर कभी किसी की दुनियाँ में दखल नहीं देते परन्तु अपने संसार में भी घुसपैठ इन्हें बरदार्शत नहीं और अपने इस स्वभाव के कारण ही अक्सर "आदमखोर" का का दशं भी झेलते हैं। कुदरत लुटा रही थी मैं बटोर रहा था मैं इन्हे सहेज कर कैमरे में कैद करता हुआ अपनी फोटोग्राफी को सार्थक कर रहा था। इसी तरह कई अन्य रोचक बातें जानवरों के व्यवहार से सीखनें और समझने की हमें जरूरत है | इनके अभाव में हम इनसे भाईचारा नहीं बना सकते | मैं अपनी फोटोग्राफी और लेखनी के माध्यम से लगातार लोगों तक इस तथ्य को पहुचाने का प्रयास कर रहा हूँ । जीवन के इस खुशनुमा सफर की असीम तृप्ति के बीच कब मैं वापस गेट पर आ गया पता ही नहीं चला और इन अनुभवों को व्यक्त करने और बांटने को व्याकुल मेरा मन एक नई सल्तनत 'टाइमर डेन" के बादशाह मेरे यार शेलेन्द्र के पास खींच लाया। शेलेन्द्र गेट पर ही मेरी प्रतिक्षा कर रहा था, हम दोनों बतियाते हुये साथ-साथ बढ चले "टाइगर डेन" रिसोर्ट के मेरे सबसे पंसदीदा रूम "पन्द्रह" की ओर .....

❁

ए-8,स्नेह नगर एक्सटेंशन, स्नेह नगर,जबलपुर
09424773344

कविता : रजनी भारद्वाज

मुझसे मिलकर भी नहीं मिलती वो लडकी

मुझसे मिलकर भी नही मिलती वो लड़की
जाने कब कंहा छूट गई मुझसे वो लड़की
फूलों की पांखुरी सी कोमलांगी
अल्हड़ शोखियों से खिलखिलाती
हवाओ को बांहों में कैद कर
मतवाली अदा से मुस्कराती वो लड़की
तितलियों के पंख पहनकर
वन उपवन की सैर पे जाती
हिरणों से कुलांचे भरती
जंगल जंगल संभाल आती वो लड़की
फिज़ाओ की खुशबू समा
हर गली कूंचे को महकाती
हर बात में एक रवानी लिए
अपनी राह बनाती नदिया सी बहती वो लड़की
आंसू पीड़ा को अपनाकर
खुद उन्हें भी हँसना सिखाती
नाकामियों को ठीक करती
खुद पे भरोसा करती जिद्दी सी वो लड़की
मन के गीत पे झूमती नाचती
उन्मुक्त कहकहों की जननी
अपनी श्यामल छब पे इठलाती
खुद से प्यार जताती दीवानी
सी वो लड़की
न जानती छल कपट प्रपंच
सादी सरल सी अनगढ़ अक्षर सी
गुणों की धनी बात की गुनी
ठोकर मार जमीं से पानी निकालती वो लड़की
फिर एक दिन उसे प्यार हो गया
कोलाहल में सिमटी बेआवाज़ सी
निज घर बार बसा के अपना
खुद से ही जुदा हो गई वो लड़की
मन की खिड़की पे दिखती है
एक सपना सा लगती है
जाने क्यों कुछ न कहती है
मुझसे मिलकर भी नही मिलती है वो लड़की

❁

187, गुरु जम्बेश्वर नगर 'ए' , लेन न. 6, गाँधी पथ,
क्वींस रोड ..जयपुर (राजस्थान) पिन -302021

मन की खिडकी खोलता हूँ जब भी
तेरे प्यार की गुनगुनाती हुई धूप
आगोश में लिए सहलाती हैं मुझे
तुम पास न् होकर भी कितना ख़याल रखती हो मेरा
तुम्हारा यही प्यार मेरे अस्तित्त्व को बख्शता हैं पूर्णता
पलपल में पिघलता हूँ तुम्हारे अदृश्य अस्तित्त्व में
जो हर पल सम्मान दिलाता हैं मुझे
तुम्हारे अनमोल प्यार को कोई नहीं जानता मगर
मै अधूरा ही रहता, गर तुम न् होती....

- पंकज त्रिवेदी

कविता : डॉ. लाल रत्नाकर

हे गाँव तुम्हारी बदहाली का...

हे गाँव तुम्हारी बदहाली का
क्या क्या दर्ज करूं ?
प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का
या सरकारी बंदोबस्त !
सड़कें, बिजली, पानी का
या स्वास्थ्य जनित इंतजामों का
झोला छाप डाक्टरों का
या लम्पट नेतागिरी का
जन्म मृत्यु के पहरेदारों
या सरकारी हिस्सेदारी का
नात-बात या अपनों का
किसकी बात करूं
जिनको देखो वही सुखी हैं
या सुख का नाटक करते हैं
अपने अपने छाँट छाँट कर
सम्बन्ध जताते हैं
भाई बंदी गुजर गयी है
किसी जमाने में
अब जो नयी संस्कृति आयी
गाँवों की हिस्सेदारी में
आयातीत है, देशी है,या
परदेश से आयी है !
सरकारी है या उधार की
करमचारिणी विचारी है
स्कूलों में, हस्पतालों में
उसकी जो कारगुजारी है
अच्छे अच्छे गुजर जा रहे
इनके इंतजामों से
ये विकास के सरकारी नाटक
दर्ज करूं ! या ....
माँ बाप तो ज़िंदा हैं
पर दुःख के मारे हैं
नौजान के हाल देखकर
हलाकान संरक्षक हैं
मेहनतकश के मेहनत की
कीमत सरकारी है
मोबाइल पर खबर मिली है
वो बेहद दुखदायी है
हे गाँव तुम्हारी बदहाली का
क्या क्या दर्ज करूं ?
गाय भैंस के गोबर का
या दूध दही की मार्केटिंग का
स्कूलों के उन्नतीकरण का
या बढ़ते पब्लिक स्कूलों का
गाँवो के उन्नतिकरण का
या शहरी होने का
भाईचारा या अपनेपन में
हिस्सेदारी का

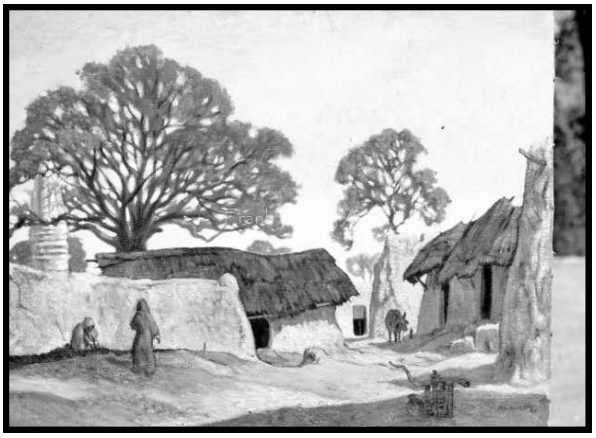

ये लेखा इतना विकट हो गया
भाई हिस्सेदारी का
बाबूजी फिर खड़े हो गए
आखिर सबकुछ खोने पर
रोते रोते बयां कर रहे
देखो मैं तो जिन्दा हूँ
बच्ची तुम अब फिकर न करना
मैं यूँ ही खड़ा रहूँ
कौन बताये उनको अब ये
बैशाखी टूट गयी
इसी व्यवस्था ने छिनी है
जिनकी खुशियों को
आश सांत्वना दे रहे हैं
हम उसी विचारी को।
हे गाँव तुम्हारी बदहाली का
क्या क्या दर्ज करूं ?

❁

R-24, राज कुंज राज नगर
गाज़ियाबाद - 201 009 (उ.प्र.)

आलेख : डॉ. पद्मा शर्मा

युवा पीढ़ी के कहानीकारों के लेखन में प्रेम -अभिव्यंजना

जीवन का मूलाधार प्रेम है। यह प्रेम संसार में पशु-पक्षी, मानव आदि सभी प्राणियों में पाया जाता है और इसके विभिन्न रूप दृष्टिगोचर होते है। यहाँ प्रेम से तात्पर्य प्रणय और परिणय से है अर्थात् प्रेमी-प्रेमिका का प्रेम और पति-पत्नी का प्रेम।

प्रेम एवं प्रणय भावों की मधुर मन्दाकिनी है जिसमें स्नान करके मानव -हृदय आनन्द-विभोर हो जाता है। प्रेम जीवन की मधुर बेला का सुरभित उच्छ्वास है। प्रेम में व्यक्ति स्वप्नलोक के आनन्द-निर्झर, कल-कल ध्वनि से निनाद करते हुए प्रभावित होते हैं इसलिए कवियों एवं लेखकों के साहित्य में इसकी प्रचुरता मिलती है।

कबीर प्रेम को दुर्लभ वस्तु मानते हैं जो खेतों में पैदा नहीं होती, बाजार में नहीं बिकती, राजा प्रजा में से किसी को इसकी चाह होती है वो अपना सिर देकर, अहं समर्पित कर इसे प्राप्त करता है। "वे ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पण्डित होए" कहकर प्रेम की महत्ता प्रदर्शित करते हैं तो "गूंगे केरो सरकरा" कहकर सिद्ध करते हैं कि प्रेम के अहसास को अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। प्रेम का मार्ग सीधा है। इस पर वे ही चल सकते है जो सच्चे, निश्छल और निष्कपट हैं। घनानंद ने इसे "अति सूधो सनेह को मारग है" कहा है। जायसी ने "प्रेम समुद्र जो अति अवगाहा" कहकर प्रेम को ध्रुव से भी ऊँचा माना है। प्रेम में भावोत्कृष्टता एवं भावप्रेषणीयता विद्यमान रहती है। इसका सीधा संबंध मानव जीवन से होता है इसलिए मानव मात्र का इसकी ओर सहज आकर्षण उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

अज्ञेय ने भी शेखर एक जीवनी में लिखा है - "प्यार एक आकर्षण है, एक शक्ति, जिसे करने जीवन की स्थितिशीलता विचलित हो जाती है। यह विचलन ही समाप्त है क्योंकि यह व्यापक है, मौलिक है, जीवन के तलवार की धार पर असंख्य धारों पर!....सधे हुए समतोल को डगमगा जाती है.....(पृ0 23 शेखर एक जीवनी -अज्ञेय)

प्रेम के दो पक्ष है संयोग और वियोग, ये जीवन के दो पहलू के रूप में विद्यमान है। दोनों से जीवन परिपूर्ण होता है और दोनों से ही एक दूसरे के महत्व का ज्ञान होता है। क्योंकि संयोग यदि आल्हादमय प्रभात है तो वियोग विषादमयी संध्या है, संयोग यदि हास है तो वियोग अश्रु है, संयोग यदि बसंत है तो वियोग पतझड़ है, संयोग यदि शीतल जल की धारा है तो वियोग अग्नि की तप्त लपट है और जिस तरह संध्या से प्रभात का, अश्रु से हास का, पतझड़ से वन का और तप्त अग्नि से शीतल जल की धारा का महत्व होता है, उसी तरह संयोग से वियोग का महत्व प्रतीत होता है। यही वियोग विरह भी कहलाता है। विरह प्रेम की कसौटी है। इस विरह में कितनी कसक, कितनी पीड़ा, कितनी वेदना एवं कितनी व्यथा होती है, इसका अनुभव तो विरह-जन ही करते है या फिर कवि या लेखक कर सकते है।

प्रणय का जीवन्त रूप विरह की पीड़ा में विद्यमान रहता है विरह में तीव्र एवं गहन अनुभूति होती है। साथ ही प्रणय विरह के आघात से दुगुना हो जाता है। इसी कारण अज्ञेय ने लिखा है पा न सकने पर तुझे संसार सूना हो गया है।

विरह के आघात से प्रिय ! प्यार दूना हो गया है। (पृ0 428, आधुनिक प्रतिनिधि कवि - द्वारिका प्रसाद सक्सैना)

युग बदले, समय बदला, भावनाओं में भी परिवर्तन हुआ। प्रेम में अपने प्रिय के सुख-दुःख का ध्यान रखा जाता था। विदेह प्रेम होता था। प्रिय की खुशी के लिए प्रेमी त्याग करता था। अपने दुःख, पीड़ा, कसक और वेदना को अव्यक्त रहने देता था| उसकी "मौन यधि" पुकार हुआ करती थी। लेकिन अब "प्रेम" तो है किन्तु उसकी भावनाओं, अहसास एवं अभिव्यक्ति में भी अन्तर आ गया है। प्रेमी की उद्दाम लालसाये प्रिय को अपना न हो सकने पर उसे भी पीड़ित, दुःखी और तड़प में पूर्ण देखना चाहता है।

किसी और की नहीं होने दूँगा तुम हो मेरा प्यार इतना ही कहा और चाकू से चीर दिया (पृ0 64- नया ज्ञानोदय, जून 07)

कहानी के प्रारंभिक चरणों में उसने कहा था में लहनासिंह का प्रेम था। जो सात्विक निश्छल पवित्र एवं अटूट था। सन् 1960 के आसपास नई कहानी का जब दौर शुरू हुआ तो "राजा निरबंसिया" में चंदा और वचनसिंह का विवाहेतर प्यार था जिसमें देह का आकर्षण था।प्रेम की कई श्रेणियाँ हो सकती हैं - विवाह पूर्व प्रेम, विवाहेतर प्रेम, दैहिक प्रेम, विदेह प्रेम। आजकल कई प्रकार की प्रेम कहानियाँ लिखी जा रही है। यहाँ तक कि प्रेम विशेषांक भी निकाले जा रहे हैं। मुख्य मुद्दा यह भी है कि प्रेम आत्मिक होता है या प्रेम देह से होकर गुजरता है, एक एक साथ कई लोगों से प्यार होता है या एकनिष्ठ होता है। कभी-कभी-प्रेम में त्रिकोणत्व की भी स्थिति आ जाती है।

यह अजीव स्थिति थी कि बिल्टू प्रेरित को उसके समीप ला रहा था और प्रेरित बिल्टू को उसके समीप मान रहा था दोनों की इस निस्वार्थ क्रियाओं से यह फैसला करना जैसे एक बार फिर से मुश्किल हो गया था कि वह वाकई किसके ज्यादा करीब है" (पृ 139, टेढ़ी उंगली घी-जयनन्दन-वसुधा

सितम्बर 04)

प्रेम मनुष्य की स्वतंत्रता की प्रखरतम अभिव्यक्ति है । प्रेम को संयमित होना चाहिये। प्रियंवद का मानना है कि प्रेम में जब देह उपलब्ध नहीं होती, किसी कारण से तब देह को बुरा, अनैतिक और पाप मानते हुए प्रेम बलिदानी, त्यागी व आदर्शवादी होता हुआ अन्ततः आत्मपीड़न, आत्मनाश में आत्मरति का सुख पाने लगता है। प्रेम ही जीवन में एक ऐसी भावना है जिसे जीवित रखने में देह की, बराबर की व निरंतर बनी रहने वाली भूमिका है। एक बार में एकाधिक लोगों से भी प्रेम किया जा सकता है क्योंकि कोई भी अपने अन्दर कई सर्वस्व समाहित कर सकता है। अपनी उच्चतम अवस्था में प्रेम वर्चस्व देता नहीं बल्कि प्रेमी का सर्वस्व अपने अन्दर ग्रहण करता है उसके दुःख पाप दोनों के साथ। (पृ.26 कथादेश जनवरी 06)

प्रेम में तलवार की धार पर चलना होता है। इसमें गम, दुःख बदनामी और आंसू मिलते हैं इसका निर्वाह वही कर सकता है जिसने जीवन को दांव पर लगा दिया हो।

.....जिसे अपने जीवन में उतार लिया था. ..जिसे अपने जीवन में उतार लिया था. एल (L) से लेक ऑफ़ टीयर्स (lake of tears), . .. ओ (O) से ओसीन ऑफ़ सोरो (ocean of sorrow), ... वी (V) से वेळी ऑफ़ डेथ (valley of death),.और . इ (E) से एंड ऑफ़ दी लाइफ (end of the life) होता हे पृष्ठ ४६ चाँद पर दाग लग गया रेत का घरोंदा_ पद्मा शर्मा

प्रेम किस्मत से मिलता है जया जादवानी का मानना है कि प्रेम अतिरेक है, प्रेम जोखिम है, प्रेम परम स्वतंत्र है। यह खुद का खुद से मिलन है। सांसारिक रिश्ते आपकी सहज विवशता हैं, आदत हैं, आपके सीमित जीवन का केन्द्र हैं। यह मांगते हैं-आपकी निष्ठा या समर्पण, त्याग या कुछ और.....। प्रेम आपको भाता है, याचक नहीं है, यह देता है अहोभाव से और इसी देने में उसकी मुक्ति है। दैहिक सम्बंध अनेक से हो सकते हैं लेकिन प्रेम नहीं। (प्र. 28 कथादेश जनवरी 06)

प्रेम बया का घोंसला होता है ऐसा देवेन्द्र जी मानते हैं वे प्रेम संबंध में एकनिष्ठता को ही स्वीकार करते हैं प्रेम की कोई उम्र नहीं होती। यह जीवन में कभी और किसी के प्रति भी घटित हो सकता है । प्रेमी भी चाहे जिस उम्र का हो उसके भीतर किशोर चंचलता जैसी हरकतें फूटने लगती हैं। प्रेम संबंधों में हिसाब किताब कम होता है फिर भी इस अशरीरी भाव पर कोई उम्र फबती है तो वह किशोरावस्था से मिलती-जुलती होती है। (पृ.30 कथादेश जनवरी 06)

भालचन्द्र जोशी की कहानी "किला समय" में लड़के लड़की का प्यार किशोरावस्था का ही है कुछ समय पहले जब वे दोनों किला घूमने आये थे तब यहाँ की दीवारों पर अपने नाम गोदे थे। "यहीं आखिरी सीढ़ी पर नीचे की तरफ पत्थर पर दोनों ने कुछ समय पहले पत्थर से ही एक दूसरे के नाम गोदे थे। पत्थर पर पत्थर से ऐसी लिखावट दुनिया की सबसे कोमल चीज है। (पूर.40 कथादेश जनवरी 06)

प्रेम के अहसास के लिए रंग, जाति, वर्ण एवं वर्ग की कोई अहमियत नहीं होती। प्रेम के लिए यह आवश्यक नहीं कि धनाढ्य और सौन्दर्यवान व्यक्ति ही इस भावना को प्राप्त कर सकता है। वरन् गरीब और सौन्दर्यहीन व्यक्ति भी इस भावपुंज को प्राप्त कर सकता है।

"उसने कोई एकांत कोना ढूंढकर अपना प्रणय निवेदन करते हुए कहा-रेशमी, मैं बदसूरत हूँ , पढ़ने में वोदा हूँ, छोटी जाति का हूँ, गरीब हूँ, एक अच्छा नाम तक नहीं है मेरा, इसका यह मतलब नहीं कि मुझे प्यार करने का हक नहीं है। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ तब यह तुम्हारी मर्जी कि तुम मुझसे प्यार करो या न करो। (पृ.127-128, टेढ़ी उंगली घी-जयनंदन-वसुधा सितम्बर 04)

देह की उपस्थिति के कारण लड़के का लड़की को तनिक स्पर्श भी सम्पूर्ण देह को झंकृत कर देता है यह अहसास से होकर गुजरता है।

"लड़की ने दीवार पर हाथ धर दिया। उसकी आंखें बन्द हो गयी। लड़की की निःशब्द देह सम्पूर्ण राग का विस्तार हो गयी थी। फिर सहसा उसने अपना हाथ हटा लिया वह किले की दीवार नहीं लड़की की देह है।" (पूर.42, किला समय-भालचन्द्र जोशी कथादेश जनवरी 06)

प्रेम जाति वर्ण नहीं देखता जब प्रेम का बीज रोपण हो जाता है तो वे अन्तार्जातीय विवाह भी कर लेते हैं। प्रेम विवाह में परिवार या समाज का विद्रोह भी प्रेमीजन सहते हैं, किन्तु उनका प्रेम कम नहीं होता।

अरूण प्रीति को दिल्ली में मिला था जब वह पत्रकारिता का कोर्स कर रही थी। वे दोनों शादी करना चाहते थे। (प्र.32, ओ मेरेया वतना-अंजली काजल, नयाज्ञानोदय जून 07)

लवलीन की "काले साये" में भी कमोवेश यही स्थिति है। किन्तु समय और परिस्थिति के अनुकूल एवं संतान की जिद के कारण माता-पिता प्रेम विवाह और अंतरजातीय विवाह को भी विधिवत मान्यता देने लगे है।

"दस साल पहले जब जया ने बगावत कर सिविल मैरिज की थी, पता नहीं रिश्तेदारों ने उसका बहिष्कार किया था या उसने रिश्तेदारों का। ..... जया ने विद्रोह कर प्रेम विवाह किया था। सुनीता ने जया की डाली लकीर को ही गहराया था वह मुम्बई के जे.जे. स्कूल आफ आर्टस में पढ़ते हुए अपने सहपाठी से प्रेम विवाह कर रही थी। फर्क इतना था कि जया को जहां परिवार वालों का विरोध और बहिष्कार सहन करना पड़ा था वहीं बुआ का सुनीता की जिद के आगे सिर झुकाकर अंतरजातीय वर को विधिवत विवाह का आयोजन कर अपनाना पड़ा था" (प्र.81, काले साये-लवलीन-कथादेश जनवरी 06)

प्रेम में मिलना, जुलना, जी भर के देखना सब कुछ आवश्यक

भी होता है। इन सबके लिए कोई उपाय न निकले तो भी सच्चे प्रेम के लिए राहे निकल ही आती हैं। लिली अरूण का प्यार भी ऐसा था जहाँ मिलने का कोई उपाय नहीं था।

"लेकिन लिली अरूण का प्यार ऐसा था कि इसमें प्रेमियों के आपस में मिलने की संभावना कोई खास नहीं दिखाई दे रही थी। वे ना तो सहपाठी थे। लिली का तो कोई बड़ा या छोटा भाई भी नहीं था कि अरूण की उससे किसी तरह की मित्रता की संभावना बन पाती.....राह इस प्रेम कहानी में निकल आयी। राह निकाली सुषमा संगीत विद्यालय ने। वहां सूफी संगीत गायन सिखाने का विशेष बैच प्रारंभ हो गया। वह बैच भी ऐसा कि जिसमें सीखने वाली सिर्फ लिली होती और सिखाने वाली स्वीटी मेम नहीं, अरूण चौधरी होता। दोपहर 1 से 3 समय रखा गया था। दोनों प्रेमी पहले तो झिझकते रहे फिर एक दिन दोनों ने प्यार के आवेश में स्वीटी मैम को साक्षी मानकर गन्धर्व विवाह कर लिया। उस दिन से लिली बालों में छिपाकर सिन्दूर भी लगाने लगी (पृ.45 नयाज्ञानोदय मई 07)

प्रेम का अजस्र स्त्रोत सभी सीमाओं को पार कर बहता रहता है ।प्रेम प्रसंग की बदनामी से बचने के लिए, समाज के भय से माता-पिता अपनी पुत्री को धर्म के नाम पर किशोरावस्था में ही समर्पित कर देते हैं। किन्तु प्रेम मरता नहीं, प्रेम के क्षण तो अमरता के क्षण होते हैं। समयानुकूल परिस्थितियाँ पाकर या अपने पूर्व प्रेमी को देखकर वे लालसायें ठीक उसी प्रकार अबाध गति से प्रवाहित होती है जैसे बांध के टूट जाने पर रूकी हुई जलधारा।

"लेकिन उस रात रमन के साथ जब उसने, वह नहीं जानती कि वह वासना थी या प्रवल प्रेम का आंतरिक उ्द्रेक, देह के बंधन को शिथिल कर दिया तो परस्पर ऊर्जाओं का जो आदान-प्रदान हुआ वह स्त्री-पुरूष के मिलन का एक अदभुत, अलौकिक, मंगल, उत्सव था और उसकी चरम परिणति के बाद मुक्तिश्री ने पूर्णत्व की प्राप्ति की।" (पृ.45 मुक्त होती औरत - प्रमोद भार्गव, हंस अगस्त 08)

कभी-कभी प्रेम में पुरूष द्वारा स्त्री के साथ विश्वासघात किया जाता है जैसे अरूण ने लिली के साथ विश्वासघात किया "अधूरी अभिलाषा" की अभिलाषा प्यार में दो बार धोखा खाती है। वह कहती हैं-

मैं सोच रही थी कि क्या यही बीसवी सदी का प्यार है, जो केवल शारीरिक सुख के अलावा कुछ नहीं" (पूर.90 अधूरी अभिलाषा-रेत का घरोंदा संग्रह-डा. पद्मा शर्मा ढेंगुला)

कुछ प्रेम प्रसंग में युवतियां इतनी बोल्ड होती हैं कि वे पुरूषों को बेवकूफ बनाती हैं। राजनारायण बोहरे की कहानी मृगछलना" की मधु के हावभाव एवं प्रतिक्रियाओं से परेश समझता रहा कि मधु उससे प्यार करती है जबकि वस्तुस्थिति यह थी कि वह काम निकालने में माहिर एवं बेवकूफ बनाने में उस्ताद थी। इससे पहले भी वह चंदू को बेवकूफ बना चुकी थी। उसकी मामा की लड़की जो परेश की क्षमा भाभी है वह परेश से खुद कहती है-.....भईया आप सचमुच बहुत भोले हो। मधु आपको बेवकूफ बना गयी। कोई गलत फहमी मत पालिये मन में। मधु हरेक को ऐसे ही हवा देती है। यह तो स्वभाव है उसका। (पृ.28 मृगछलना-गोस्टा तथा अन्य कहानियाँ - राजनारायण बोहरे)

संजीव ठाकुर की "सती बिहुला की कथा" में भी मैं" की यही कहानी है-"यहाँ मेरी बिहुला तो खुद ही नाग बनकर मुझको डस गयी है, सुहागरात के पहले, और दूसरा पति ढूंढ रही है। (पृ.100, कथादेश जनवरी 06)

प्रेम के लिए उम्र, जन्म एवं वर्ग तथा वर्ण कोई मायने नहीं रखते। प्रेम कभी भी किसी से भी हो सकता है विवाह के पूर्व भी और विवाह के बाद भी। किन्तु विवाहेतर प्रेम में परिवार एवं गृहस्थी छिन्न-भिन्न हो जाती है। चाहे वह पुरूष के द्वारा किया गया हो चाहे स्त्री के द्वारा। शशि भूषण ने अपनी कहानी "फटा पेन्ट और एक दिन का प्रेम" में लिखा है- विवाहित व्यक्तियों में बचपन की दोस्ती का स्मरण भी दाम्पत्य जीवन के बिखराव का डर पैदा करता है। (पृ.107 कथादेश जनवरी 06)

मो. आरिफ की "फूलों का बाड़ा" में मैं (स्त्री) का एक दोस्त है जिसे वह प्रेम करती है।

"मेरा एक खास पुरूष मित्र था वही ..... वही जो एटलांटिस के सामने मल्टीप्लेक्स में एंट्रेंस पर अपनी स्कार्पियो लेकर खड़ा रहता था ..... जिसके साथ मैं उड़ जाया करती थी जिसके प्रेम में पागल थी ....." (पूर.69 नया ज्ञानोदय मई 07)

ए.असफल की कहानी "लव" में अरूण विवाहित है जो संध्या से प्यार करता है| प्यार जिसे कहते हैं ,वह कब का हो चुका है रात में उसी के सपने आते हैं और दिन में खुली आँख में भी वही छायी रहती है।

"..... अब एक औरत के हिस्से में अधूरा आदमी और आदमी के हिस्से में दूसरी औरत खुदा ने सहसा बख्श दी।..... आदमी की प्यास तक तक सोयी रहती है संध्या। जब तक कि उसे उचित पात्र नहीं मिल जाता। .....(पूर.120 कथादेश जनवरी 06)

स्त्री विवाहेतर संबंध कितने भी बना ले किन्तु शादी करने पर उसका दर्जा कम हो जाता है। वह प्रेमिका न होकर पत्नी बन जाती है। राधा संध्या से कहती है-"तुम जब तक स्वतंत्र हो तभी तक तुम्हारा अस्तित्व है। जिस दिन इनके अधीन हो जाओगी-प्यार खत्म हो जायेगा। बासी पड़ जाओगी। बच्चे बनाने वाली मशीन और दोयम दर्जे की नागरिक। अभी सुन्दर हो और प्रेमिका हो ..... फिर कुछ नहीं बचेगा। (पूर.121, लव-ए-असफल, कथादेश जनवरी 06)

वंदना राग की शहादत और अतिक्रमण" में मुन्नी सिंह पति की शहादत के बाद रमेश सोनाने की ओर आकर्षित हो जाती है और उसी के साथ चली जाती है। (पृ.118, नया ज्ञानोदय मई 07)

विवाह पूर्व प्रेम ही प्रेम की श्रेणी में नहीं हैं। विवाह के उपरान्त पति-पत्नी के बीच जो अहसास, अनुभव, क्रियाकलाप होते है वे भी प्रेम से परिपूर्ण होते हैं। पति-पत्नी का प्रेम भी सच्चे अर्थों में प्रेम ही है उम्र दराज होने पर भी पति-पत्नी का एक दूसरे के प्रति आकर्षण सम्भाव्य है। नीलाक्षी सिंह की कहानी ''आदमी, औरत और घर'' में पति-पत्नी के प्रेम को व्यक्त किया गया है।

आदमी के जीवन में बहुत कुछ पहली बार हो रहा था.... पहली बार उसके दिल में किसी के प्रति प्यार जाग रहा था।''

प्रेम होता तो मन में शरीर हावी नहीं होता.. अगर जवानी में यही सब होता तो प्रेम कहलाता और बुढ़ापे में यही शरीर का मामला क्यों। शरीर की ही बात होती तो इतने वर्षों तक सब कुछ एक दूसरे के सामने उघरा होने पर भी वह हसरत क्यों नहीं जागी जो अब जागी है ? यह प्रेम है , प्रेम ही है। प्रेम के सिवा कुछ नहीं।''(पृर.72 कथादेश जनवरी 06)

प्रेम में स्वप्न की बहुत अहमियत है। फायड का मानना था कि अतृप्त काम वासनायें अवचेतन में बैठ जाती है जो स्वप्न में दिखाई देती हैं। ''मृगछलना का परेश स्वप्न में अपनी प्रेयषी को साथ देखता है।

''..... उसकी आंख लग गयी ..... वे दोनों अकेले थे, उस वक्त। भेड़ाघाट की एक चट्टान पर बैठकर धुँआधार प्रपात का कलरव सुन रहे थे-वे दोनों। परेश ने आसपास का जायजा लिया तो ज्ञात हुआ कि दूर-दूर तक कोई नहीं है वहाँ बस वे दोनों हैं।.... (पृ.29 मृगछलना-गोस्टा तथा अन्य कहानियाँ -राजनारायण बोहरे)

रीतिकालीन लक्षण ग्रंथों में विभिन्न नायिका भेद स्वीकार किए गए हैं। मिलन पूर्व सुसज्जित प्रवास समागम, प्रथम समागम, स्वप्न दर्शन, चित्र दर्शन, सौन्दर्य प्रशंसा आदि का चित्रण किया गया है। जब नायिका विभिन्न प्रकार से सजसंवर कर नायक से मिलने के लिए जाती हैं तो नायक उसके सौन्दर्य की ओर आकर्षित होता है सौन्दर्य आंखों से होकर दिल में प्रवेश करता है वहीं से प्रेम शुरू होता है।

''वह मदभरी आंख रसीले होंठ और सुर्ख कपोल नजर में छा कर रह गये''(118 लव एक असफल, कथादेश जनवरी 06) कहानियों में कहीं-कहीं अंग प्रत्यंगों का भी वर्णन किया गया है। नाक-नक्श ही प्रथम दृष्टया व्यक्ति को आकर्षित करता है। नायिका के बनाव शृंगार में कपड़ों की भी बहुत अहमियत होती है।

''कली बेहद खूबसूरत थी। सांवला तंबई रंग, तीखे नाजुक नक्श, बाल लड़कों की तरह कटे हुए जैसे काले वालों की टोपी पहन रखी हो। गालों की हड्डियों का उभार और होंठों की बनावट मेरे दिल पर कुछ अव्यक्त लोट जाता था। बदरंग जींस और कुर्ते में कली का फक्कड़पना और मस्ती मुझे खींचता था (पृ.52 खुशबू, शबनम, रंग सितारे-प्रत्यक्षा-नया ज्ञानोदय मई 07)

सौन्दर्य एवं आकर्षण के लिए आवश्यक नहीं कि श्वेतवर्ण ही हो। ब्लैक ब्यूटी भी आकर्षण लिये होती है। नायक या नायिका को अपना प्रिय अधिक सुन्दर न होने पर भी दुनिया का सबसे खूबसूरत इंसान दिखता है।

''निन्नी सांवली है, उसके पास दक्षिण भारतीय रंग हैं-थोड़ा चमकीला और थोड़ा कत्थई और थोड़ा सांवला। वह बहुत सुन्दर नहीं है पर ऐसी है कि देखो तो देखते रहने की इच्छा देर तक भीतर बनी रहती है। (पृ.48 अधखाया फल-आनंद हर्षुल कथादेश जनवरी 06)

उम्र, जाति, रंग, वर्ण से परे तथा रिश्तों में भी प्रेम आसक्ति हो सकती है। कुणाल सिंह की साईकिल'' कहानी में मैं का आकर्षण चाची के प्रति है।

''..... उम्र ज्यादा नहीं, बहुत हुआ तो तीस-पैंतीस। शरीर बंधा हुआ। वे खूब गोरी थी ..... चाची खूब हंसती। हंसती तो उनकी देह थर-थर हिलती। लगता उनके हर अंग से हंसी के छोटे-छोटे दाने झड़ते हैं। चाची हंसती तो और भी अच्छी लगती। (पृ.80 सनातन बाबू का दाम्पत्य-कुणाल सिंह)

कहानियों में स्त्री सौन्दर्य के वर्णन के साथ-साथ पुरूष के सौन्दर्य का भी वर्णन मिलता है। ''लालसिंह का लंबा कद, भरवां शरीर, चौड़ी मजबूत छाती और रसीली आंख जिनकी ताव झेली नहीं जाती थी। (पृ.130 मनुजी तेने बरन बनाए -ए. असफल)

प्रेम में अन्तकरण में मंजुल भावनायें, प्रेमिल उत्कण्ठायें एवं मृदुल कल्पनायें उत्पन्न होती हैं। आज का प्रेम देह से होकर गुजरता है। उम्र के एक पड़ाव के बाद तो पाक मुहब्बत नहीं प्योर मुहब्बत होती है ''देह में नशा होता है, प्यार के भी कोई मायने नहीं, देह और सिर्फ देह'' (पृ.67-कविता, हंस सितम्बर 04)

वर्तमान युग के साथ-साथ आज का कहानीकार यथार्थ से दूर नहीं है प्रेम भावों की उल्लासमयी स्वच्छंदगति है। प्रेम में देह का मिलन कुछ कहानीकारों ने आवश्यक माना है। देह की आवश्यकता ही प्रेम का पर्याय बनती जा रही है।

वह उत्तेजना महसूस करने लगी है। छत के आइने में उसे अपना ही बदन पिघलता सा सोना दिखाई दिया। .... चुपके से उसने अपने बदन के शेष वस्त्र भी लूज कर लिये ताकि तूफान फिर न थम जाये कहीं और ज्यों ही वह आइसक्रीम निबटाकर लेटा वह उफनती हुई लहर-सी हहराकर उससे लिपट गई। ..... बरसों की तड़प् एक पल में सिमट आई थी। अंजान ने बेशुमार चुम्बनों और मीठी चिकोटियों से भर दिया उसे। (पृर.131 मनुजी तेनेबरन बनाए ए. असफल)

वर्तमान में कहानियों में कामविदग्ध नायक-नायिकाओं की रतिक्रीड़ा प्रणयलीला, हास-विलास प्रेम व्यापार आदि का स्वच्छंदता के साथ वर्णन किया जाने लगा है। उम्र और रिश्तों की मर्यादा भी आज समाप्त प्रायः हो गयी है।''चाची को दुबारा चूमने के बाद भी मैं एक गर्वीले पौरूष से उमग उठा। मैंने अनावश्यक रूप से उन्हें अपनी बाहों में उठा लेने की चेष्टा की। .... चाची की देह भरी हुई और भारी थी।

उन्हें जमीन पर उतारते ही वे किसी उद्दाम आवेग से भरकर मुझ से लिपट पड़ी। मारे उत्तेजना के उनकी देह थरथरा रही थी। इसके बाद जो था मेरे लिए नया था, जिसके सामने अब तक की मेरी सारी अनभिज्ञतायें थोथी पड़ने लगीं। मैं किसी अदने बच्चे की तरह चाची के वैभव में गुम था'' (पूर.89 साइकिल कहानी-सनातन बाबू का दाम्पत्य संग्रह-कुणाल सिंह)

सच्चे प्रेमी अपनी राह भी बदल देते हैं क्योंकि प्रेम सिर्फ विवाह या देह प्राप्ति की मंजिल नहीं है सच्चे प्रेमी अपने प्रिय को सम्पन्न देखना चाहता है। सच्चे प्रेम में प्रिय को पाने की चाहत मात्र नहीं होती। प्रभात रंजन की पर्दा गिरता है'' मैं सच्चे प्रेमी शालीन-शौरीन धर्म को नहीं मानते, जुदा नहीं होना चाहते पर आखिर वे कलाकार के रूप में एक दूसरे की याद बनते हैं (पूर.पर्दा गिरता है-प्रभात रंजन)

प्रेम तो आत्मिक होना चाहिए न कि शारीरिक क्षुधा की तृप्ति मात्र। नेन्सी जोगिन जब संकल्प लेती है तो अपने मन तथा अपने शरीर को भी नियंत्रित कर लेती हैं और किसना से कहती हैं– हमने जोग साध लओ है। साढ़े चार महीनो से इतेई हैं, घर-आंगन सग छोड़ आए'' (पृ.48 नैन्सी-ए. असफल हंस मई 07

प्रेम अमरता के क्षण हैं। प्रेम की अनन्यता एकनिष्ठता में है वही शुद्ध सात्विक प्रेम है। युवा पीढ़ी की कहानियों में जो प्रेम अभिव्यक्ति हुयी है। वह समय, परिस्थिति एवं आयुवेग के अनुसार यथोचित भले ही हो, किन्तु प्रेम की उद्दाम भावना को अभिव्यक्त करने के लिए किसी संचार एवं संसाधन तथा प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं है। प्रेम की अनन्यता एकनिष्ठता में है वहीं शुद्ध सात्विक प्रेम हैं प्रेम की भावना मन के अहसास से हृदय की तरंग से और नयनों की वाणी से भी समझी जा सकती है। रांगेय राघव की गदल में प्रेम अभिव्यक्ति अकल्पनीय, अदृष्टिगोचर और उद्दाम आवेग से परिपूर्ण है जो उसकी मौन मधि पुकार हैं।

❁

एफ-1, प्रोफेसर कोलोनी, शिवपुरी, (म.प्र.) 473551
09406980207

चुम्बन

रख दिये तुम ने नज़र में बादलों को साध कर,
आज माथे पर, सरल संगीत से निर्मित अधर;

आरती के दीपकों की झिलमिलाती छाँह में
बाँसुरी रखी हुई ज्यों भागवत के पृष्ठ पर !

- धर्मवीर भारती

(दूसरा सप्तक - सं. अज्ञेय)

वार्षिक-आजीवन-संरक्षक सदस्यता

❁

वार्षिक सदस्यता : 200/- रुपये

आजीवन : 1500/- रुपये (10– वर्ष के लिये)

(सभी डाक खर्च सहित)

संरक्षक सदस्य

Rs. 5000/- से Rs. 25000/-

*

'नव्या पब्लिकेशन' के नाम से ही डिमांड ड्राफ्ट या AT PAAR का चेक से ही शुल्क भेजें

Online payment : ICICI BANK

BRANCH :

0000453– SURENDRANAGAR—Gujarat

CUSTOMER ID : **528924887**

A/c. NO. **045305500131**

Internet Banking Corporate ID :

528924887

नव्या पब्लिकेशन

C/o. पंकज त्रिवेदी

गोकुलपार्क सोसायटी, 80 फीट रोड,

सुरेंद्रनगर– 363 002 गुजरात

Mobile : 09662514007 - 09409270663

Advertise

Last Cover– 4,	**A4 size…**	**Multi color Rs. 10,000/-**
Cover page-3,	**A4 size...**	**Multi color Rs. 05,000/-**
Cover page-2,	**A4 size...**	**Multi color Rs. 05,000/-**
Running page	**A4 size…**	**Black-white Rs. 2,500/-**

गज़ल : रघुनाथ मिश्र

गज़ल

बनना व बनाना ,कोई आसान नहीँ है.
अँदर से दे आनन्द,वो सामान नहीँ है.
अखलाक की कमी न हो, ये बात जरूरी,
सच्चाई बयानी , कोई अपमान नहीँ है.
सारी उमर मैँ आज तलक, होश ही नहीँ,
समझ न पायेँ लोग, वो व्याख्यान् नहीँ है.
जिन्दा हैँ हम जरूर, ये पर्याप्त नहीँ पर्,
औरोँ के लिये जिया जो, नादान नहीँ है.
जिसमेँ मदद नहीँ, किसी लाचार के लिये,
सचमुच ही मुकम्मल, वो खान्दान नहीँ है.
बैठे- बिठाए भेजे, जरूरत की सभी चीज,
इस जग मैँ इस तरह का, आसमान नहीँ है.
कठिनाइयोँ से जूझ कर फौलाद बनेँगे,
रोना किसी मसले का समाधान नहीं है.

❊

संपर्क: 3-के-30, तलवंडी,
कोटा-324005 (राजस्थान)
मोबाइल: 09214313946

कविता : अरुण देव

स्मृतियाँ

बुझे हुए दिनों की लपट भी जलाती है

सर्द रात में अपमान से भीगा वह भारी कम्बल
जिसके चुभन के निशान अभी भी हैं

प्रतिहिंसा की कड़वी चाय आज फिर पीने बैठा हूँ
कई बार सोचा आत्मघात के बारे में
मैं हत्यारा होते होते रह गया
चलने से रह गई वह बारूद, मेरे नथुनों में अभी भी है

कोयले से राख हटाता हूँ
थरथराती वह लपट फिर दिख जाती है

वह लपलपाती हुई धार
जो वर्षों से पी रही है मेरा ही रक्त

स्मृतियाँ
पिंजड़े की उस चिडिया की तरह हैं
जब-जब बाहर आती हैं
खरोंच और चोट लिए आती हैं.

❊

डॉ. अरुण देव
साहू जैन कोलेज,
नजीबाबाद
बिजनोर (उ.प्र.)-
246763

कहानी : अंजु (अनु) चौधरी

एक नई शुरुआत

बाँझ, बाँझ, बाँझ ये शब्द सुन सुन का संध्या अब थक चुकी थी| शादी के दस सालों के बाद भी उसके व्यवहार, उसकी सेवाभाव से कोई भी प्रसन्न नहीं था | क्योंकि वो इस घर को उनका वारिस नहीं दे सकी थी| अब वो भी अपने इस घर से,यहाँ के लोगों से ऊब चुकी थी| जो उसकी मनोदशा को नहीं समझ रहें थे| दिनरात घर के कामों में खपना | यहाँ के लोगों को खुश रखना, उनके दिनभर के काम करना | उसकी दिनचर्या का हिस्सा था | हर वक्त भाग भाग कर बिना आराम किए वो सबकी इच्छा पूर्ति करती आ रही थी और रात को बंद दरवाज़े के पीछे का सच उसके सिवा कोई नहीं जानता था| वो कहे भी तो किस से? कहने के बाद का मज़ाक और तिरस्कार की भागी अब वो नहीं बनाना चाहती थी | उसने खुद को उस रब के हवाले छोड़ दिया था, जिस ने उसे इस तरह का जीवन जीने को दिया| हर बार वो ये ही सोचती थी कि अगर वो इतनी भाग्यशाली होती कि सीप की तरह उसकी कोख से कोई मोती जन्म लेता तो ये सौभाग्य उसे कब का मिल चुका होता | एक घट जो उपजता है, जो पैदा होता है | भीतर की ये उमंग उसे कभी नसीब नहीं होगी | ये बात उसने अपने आप को बहुत अच्छे से समझा दी थी | आकार के पार की सोच को दर किनारा कर उसने कभी हँसते हुए और कभी रोते हुए अपने समय से समझौता कर लिया था| उसके मन की कशमकश उसे कभी टिक कर घर नहीं बैठने देती थी| कभी मंदिर, कभी किसी दरगाह पर माथा टेकना कि कोई तो भगवान होगा जो उसकी सुनेगा, उसे किसी भी बाबा के आश्रम ले जाती थी| पर पिछले कुछ वक्त से अपने पड़ोस वाले मंदिर में जाना और वहाँ कथा-प्रवचन सुनना और वहाँ मंडली के साथ कीर्तन करना अब भाने लगा था और उसका खाली वक्त जो कभी घर की कटीली बातों में गुज़रता था अब वो अपने लिए जीने लगी थी| बार बार उसके मन में एक विचार अपना सर उठा कर परेशां करने लगता था कि क्या वो भी अपने लिए एक नई शुरुवात करने की कोशिश करे?क्या वो अपनी मर्यादा, अपनी लीक से हट कर कुछ कदम बढ़ाए अपनी इस जिंदगी के लिए| इसके लिए उसे सबसे पहले अपने संस्कार,मान्यताओं को खुद से बहुत दूर करना था तभी वो एक नई शुरुवात कर सकती थी |

शादी के पंद्रह साल के बाद संध्या गर्भवती है अब ये बात उसके घर वालो के साथ साथ उसकी कीर्तन मंडली को भी पता चल चुकी थी, सब बहुत खुश थे और संध्या इन सब से ज्यादा खुश थी क्यों कि उसी सोच को उसके बरसों के इंतज़ार को अब आकार मिलने वाला था |इस बात को वो अब बहुत अच्छे से जान गई थी संन्यासी और संसारी में इतना फर्क क्यों है ?संसारी अपनी निजी आकांक्षा के लिए ही जीवित है और संन्यासी देने के बाद, कुछ हुआ भी है, सब भूल कर अपनी दुनिया में मस्त रमा रहता है, उसकी भक्ति और उसकी ही चिलम के साथ | पर उसकी इस नई दुनिया के लिए, इस नए परिवर्तन के कौन जिम्मेदार है,ये किसी को सोचने तक की फुर्सत नहीं थी, सबको उसके गर्भवती होने की अधिक खुशी थी कि वो उनका वंश आगे बढ़ा रही थी | लड़का हो या लड़की अब सब कुछ बाते गौण हो चुकी थी, सब बस एक बच्चा चाहते थे ये संध्या के लिए खुशी की बात थी कि वो बंधन मुक्त हो चुकी है| तिरस्कार और अवहेलना जीवन से अब दूर हुए है ,इसी बात को अपने दिमाग में बिठा उसने अपनी जिंदगी का सबसे बड़ा राज़ अपने ही अंदर दफ़न कर दिया था | सत्य के अनेक पहलू हैं और इस सत्य के विपरीत एक सबसे बड़ा सत्य ये था कि सबको बच्चे की चाहत थी, ये बच्चा किस से है, इस बात से किसी को कोई लेना देना नहीं था, सिवाए सिर्फ एक इंसान के और वो था संध्या का पति,पर वो भी चुप्पी साधे हुए था क्योंकि संध्या के सच से पहले वो खुद का सच जानता था कि वो ही नपुंसक है और ये सब जानते हुए उसकी सोच भी ये ही थी कि अब मैं ही कोई अड़चन ना डालूँ,क्यों कि इतने साल बच्चा ना होने में, मैं ही सबसे बड़ा बाधक था | अब तक की जिंदगी में वो संध्या को घरवालों और समाज के सामने हराता आया था और अब इस वक्त वो जीत कर भी हार चुका था क्यों कि उसके ही सामने संध्या ने अपने माथे से ''बाँझ'' शब्द का बोझ उतार फैंका था,उसने संध्या के सच को उसकी नई जिंदगी और उसकी इस नई शुरुवात को अपने सुर में सुर मिला कर स्वीकार करना ही पड़ा ''जो है वो मेरा है और मैं इसका हूँ ''||

❁

ANJU (ANU) CHAUDHARI
HOUSE NO. 710, SECTOR-13
URBAN ESTATE,
KARNAL- 132001 (HARYANA)

कहानी : अर्चना ठाकुर

मंथन

शीबू के सामने तमंचा रखा था ,तमंचा पर उसकी नज़र गड़ चुकी थी| उसकी अनबूझी आँखें तमंचा को उठाने की ओर हिचकिचाते बढ़ते अपने हाथ पर थी |चेहरे पर छायी घबराहट पसीने की बूंदों के रूप में शिकन भरे माथे से लुढ़कती उसके देह में घुली जा रही थी |उसने तमंचा उठा लिया ,अब उसकी हथेलियों के घेरों में तमंचा था| तमंचा के भार या जरूरत इन दो में से जाने कौन सा कारण उसके चेहरे पर पसीने की बाढ़ ला रहा था |उसी पल कानों में पायल की एक छन्न से उसकी तंद्रा भंग हो जाती है| 'आगे आओ' वो आगे चल देता है |दो भाई अब साथ साथ चल रहे थे |खेतों की मेड़ों से ग्यारह साल का शीबू उछलते कूदते गुज़र रहा था |वहीं उसके पीछे चलता उसका बड़ा भाई किशन भी अपनी चौकस नज़रों से शीबू को पकड़े मेड़ों को पार कर रहा था| मेड़ों के उथले गहरे रास्तों को पार करते करते वे कदम अब समतल धूल भरे मैदान तक आ पहुँचे थे |जहाँ का शोर उनका ध्यान अपनी ओर तेज़ी से खींचता है |उस धूल भरे मैदान में किशन के हम उम्र सात आठ लड़के बैट-बल्ला खेल रहे थे |नियम-अनुभव को ताक पर रखते वे आनंद और फुर्ती के साथ चिल्लाते, दौड़ते बैट बल्ला खेल रहे थे| किशन शीबू की ओर देखता है|शीबू की आँखों की चमक जैसे उन लड़कों के पास जाने का आग्रह थी |वो झट से शीबू का हाथ पकड़े उस झुंड की ओर बढ़ जाता है |झुंड उन्हें देख वहीं थम जाता है |

'नहीं किशन अबकी शीबू नहीं, तुम्हें आना हो तो कहो - |'

'तुम लोग जानते हो - मैं शीबू को लिए बिना कुछ नहीं करता - शीबू खेलेगा तभी मैं आऊँगा - |'

सब शीबू के साथ किशन को भी ना करना चाहते थे|उनके चेहरे के भाव जैसे सब प्रकट रूप में कह रहे थे पर ना का एक शब्द भी किसी के मुँह से नहीं फूटा|

'ठीक है -|'जैसे ये शब्द गला पकड़ कर बुलवाए गए हो | कुछ ही पल में सब तय हो गया|अब बल्ला शीबू के हाथ संभाले थे| वो

कस कर बल्ला पकड़े अपनी आँखें गेंद पर गड़ा देता है|किशन शीबू के पीछे खड़ा था |गेंद और शीबू की चौकसी करने |गेंद तेज़ी से उसकी और बढ़ रही थी, वो बल्ला और कस कर पकड़ लेता है|शीबू घूमती आती तेज़ गेंद की दिशा से भ्रमित हो जाता है और एक ही पल में तीन चीज़े एक साथ घट जाती है|तेज़ी से गेंद का आना, किशन द्वारा गेंद लपकना और शीबू का बल्ला छोड़ नीचे अपने घुटनों के बीच गर्दन डाल लेना|सब लड़के तेज़ी से हंस पड़ते है | शीबू घबराया, रूआँसा नीचे बैठा गर्दन उठा कर सबकी ओर देखता है |किशन की त्यौरियां चढ़ जाती है| वो झट से गेंद को वापिस बिना कोई संकेत दिए उस लड़के की ओर फेंक देता है, जिसने गेंद डाली थी अभी -| वो चिल्ला कर जमीन पर लुढ़क जाता है |गेंद ने उसके माथे की सीध पर हमला बोला था ,उसका सूज़ा हुआ माथा उसकी आंखो में आग भर देता है |

'मुझे क्यों गेंद मारी |'

'क्योकि तुमने जान बूझ कर इतनी तेज़ गेंद शीबू को दी ,अभी उसको लग जाती तो !' वो कहना तो ये चाहता था की' अपने गूंगे बुद्धू भाई को आखिर खेलने लाए ही क्यों? 'पर किशन की काठी और रुतबे के डर से उसके सारे शब्द उलट पुलट कर उसके मुँह से इस तरह निकलते है -'तो गेंद की ओर तुम्हारे भाई ने ध्यान नहीं दिया ,मैंने ठीक ही फेंकी थी|'

सब वॉक युद्ध धीरे धीरे माहौल को गर्म कर रहा था|सब लड़के जैसे यही चाहते थे की किशन को किस तरह से गलत ठहराया जाए और वहाँ से उन दोनों भाइयों को रफ़ा दफ़ा किया जाए| किशन हमेशा ही अपने भाई का पक्ष धरता सारी दुनिया से लड़ने खड़ा रहता था|अब उसने आव देखा न ताव और उन सातों लड़को पर अकेला ही भिड़ गया|मार घूसा लात किसको कितनी पड़ी शीबू की सहमी आँखें घुटनों के बीच छुपी नहीं गिन पाई पर दबे स्वर अपने भाई के लिए मन ही मन प्रार्थना जरूर कर रहे थे| तभी एक तेज़ ध्वनि से सबके हाथ थम गए | खेतों के क्षितिज से गुजरती रेल की पटरियों पर थिरकती एक ट्रेन वहाँ से गुज़र रही थी|उस लंबी ,टेढ़ी मेढ़ी पटरियों पर मटकती थिरकती ट्रेन जैसे उस धुंधली सांझ में कोई नृत्य करती वहाँ से गुज़र रही थी | उसे देख लड़के मार पीट करना भूल गए और शीबू घबराना भूल गया| धीरे धीरे क्षितिज से सरकती ट्रेन काअंतिम सिरा अब दिख रहा था| फिर ट्रेन लुप्त हो गई किसी मोहनी की तरह | उसके जाते उन लड़को का ध्यान उस ओर गया| वे किशन को ढूँढने लगे|

वे देखते है की शीबू का हाथ पकड़े किशन मेड़ों पर से भागते अब अगला खेत पार कर चुका था |

'ये क्या हुआ -!' रुक्मणी दीदी यही कहेगी,ये सोच किशन चुपके से घर के पिछवाड़े से घर में घुसने जा रहा था| घर के आगे के दरवाजे से शीबू पहले ही अंदर जा चुका था|

'क्या करता रहा - पूरी धूल में नहा कर आया है- जा पैर धो कर आ तभी रोटी मिलेगी -|'

अम्मा की तीखी वाणी सुन किशन बिन सोचे विचारे झट से वहाँ आ गया -'शीबू धूल में गिर गया था - उसे कुछ मत कहो|'

अम्मा का गुस्सा जैसे उसी की बाट जोह रहा था|फिर अम्मा ने जाने क्या क्या नहीं कहा ,शायद जो नहीं कहने वाला शब्द था वो भी कह दिया पर किशन चुपचाप सर झुकाए सुनता रहा|पलट कर कुछ नहीं कहा| 'नासपीटा 'आखिरी शब्द थूक की तरह फेंकती वो रसोई में झट से घुस गई|अब रसोई की खड़ खड़ की आती आवाज़ भी उनका गुस्सा प्रदर्शित कर रही थी|सोलह साल की रुक्मणी धीरे से किशन की पीठ पर एक धौल जमाती है |वो पलट कर देखता है|रुक्मणी बिना आवाज़ किए तेज़ी से हँस रही थी उसे देख किशन भी हँस पड़ता है|पास की खड़ा शीबू का चेहरा अब दोनों की हँसी में घुल मिल गया था| किशन आँगन में शीबू का हाथ मुँह धुला रहा था|मिट्टी के गीले आँगन में पानी से भरे गड्ढे पर शीबू शरारत से झट से पैर डाल देता,इस पर किशन किसी बड़े की तरह शीबू के बचपने पर हँस पड़ता|किशन पानी से भरी बाल्टी के पानी की एक अंजुली उसकी मिट्टी भरी देह पर डाल देता और हँस पड़ता|फिर दोनों अब खाने के लिए मिट्टी के फर्श पर चटाई बिछाए खाने का इंतज़ार कर रहे थे | रुक्मणी अम्मा का काम में हाथ बँटा रही थी और जो थाली किशन शीबू के लिए थी, वो उसमे चुपके से अपने दुपट्टे में छुपाई रोटी से और भर कर उन दोनों के पास आती है |

फिर दोनों की थाली दे कर जल्दी से अम्मा के पास रसोई में चली जाती है|काम में मदद करने ताकि अम्मा वहीं रहे और उन दोनों के पास न जाए|नहीं तो फिर सौतेली डाह उन तीनों पर बिजली की तरह गिर पड़ेगी |बाबा मुरझाए अब अंदर आते है अम्मा झट से दौड़ कर पानी का गिलास लिए कहती हुई वहाँ आती है -'सारा काम मैं ही करूँ - एक जान सौकाम|'

शीबू के जन्म के दो वर्ष बाद चौथा बच्चे को जन्म देते शीबू की माँ चल बसी, न बच्चा रहा न पत्नी|शीबू का पिता सिर धुन कर ही रह गया|तब दो वर्षीय शीबू, आठ वर्षीय किशन और बारहा वर्षीय रुक्मणी को संभालते तीन महीने बाद ही उसके पिता ने दूसरा ब्याह कर लिया|आठ आना मिला तो नहीं हाँ आठ आना अपना ही खर्च कर दूसरा ब्याह उस साँवली से ये ख्याल कर किया की गृहस्थी संभल जाएगी|पर शीबू के बापू अक्सर उन बच्चों की दयनीय स्थिति और नई नवेली पत्नी की धौंस के बीच पिस जाते थे|अब पाँच वर्ष हो चुके दूसरे ब्याह को साँवली कोई बच्चा न दे सकी थी तो सौतन के तीन बच्चे उसके गले में फंसी फांस से दुखते थे |पर क्या करती न उगला जाए न निगला जाए|

गूंगे शीबू की देखभाल जैसे किशन के जीवन का अहम काम था|वह शीबू की माँ बन कर उसकी देखभाल करता उसका बराबर ध्यान रखता|और साँवली के गुस्से से हर सम्भव शीबू को बचाता रहता| रुक्मणी ने तो अपने को अम्मा की नौकरानी के रूप में ढाल लिया था, न ज्यादा सोचना, न विचारना तो कोई तकलीफ ही नहीं|लेकिन शीबू का ख्याल वो भी खास तौर पर रखती थी |बचपन से ही कुदरत की मार शीबू पर रही ईश्वर ने सुनने की शक्ति तो दी पर अपनी कहने की क्षमता नहीं दी|इसलिए दोनों भाई बहन की हमदर्दी और सौतेली डाह के बीच शीबू ज़ी रहा था|

जीवन दायनी निर्मल गंगा जो उनके खेतों और उनके जीवन का मुख्य स्त्रोत थी एक दिन उसकी के बहाव में सब बह गया, खेत के साथ अरमान, जीवन, उम्मीदें, आशाए |बाबा की आँखों के सामने अब भूखा दैत्य मुँह खोले आग उगलता खड़ा था| ज़मीन पर कुछ उपज़ाने एक किसान अब हाथ पसारे खड़ा था तकदीर के सामने|भुखमरी,तबाही से कुछ पलायन कर गए कुछ न सह सके तो गहरी रात में सदा के लिए दफ़न हो गए तो कुछ जरूरत मंदों का फ़ायदा उठाने वालों के हाथों बिक गए, फिर तीन घटनाए एक साथ घट गई और शीबू के परिवार का जीवन बदल गया| बापूने रुक्मणी का ब्याह करा दिया| एक ही दिन में,एक ही घंटे में और नोटों की गड्डी लिए कंबल में छुपाए सो गए | नोटो की गड्डी से चुधियाइ आँखों से लार टपकाती साँवली ने गड्डी आंचल में छुपाई और रातों रात भाग गई | नाम तो कई हवा में उड़े पर जो गाँव में सबसे छिछोरा था उसके नज़र न आने से साँवली का नाम उसी से जोड़ दिया गया | बाबू सदमा न सह सके | एक तो गुनाह की बड़ी गठरी की बेटी को घर खेत की जान बचाने के वक़्त सामान समझने की भूल की तो दूसरा पत्नी से शर्मसार हुए | सुबह किशन,शीबू की आँख खुली तो दोनों ने देखा की बापू अब कभी नहीं उठेंगे | अब गावँ मे भूख, लाचारी, बदनामी का बोझा इतना बढ़ गया था की किशन शीबू का हाथ पकड़े गावँ से बाहर निकल आता है और जिस रेलगाड़ी को खेतो की क्षितिज पर मचलता देखता रहता था आज अनबुझा सा उसी में बैठ जाता है | बीते दस वर्षो में बनारस शहर की अंध गलियों ने किशन को किशन भाई बना दिया था|चुनाव का समय हो, मूल उगलवाना हो,ब्याज़ वसूलना हो,किसी को सबक़ सीखना हो, हर बीमारी का इलाज़ किशन भाई ही होते थे।

'शीबू-'|

शीबू एक आवाज़ पर ही कही से भी दौड़ा चला आता था।

'देख तो - क्या लाया हूँ'।

शीबू ने सोचा भाई फिर कुछ लाया है उसके लिए। उसके गूंगे स्वर चिल्ला चिल्ला कर कह रहे थे - मेरा है मुझे चाहिए। पर एक ही पल में उसकी नजरें चुप हो जाती है। किशन एक किनारे हट जाता है, उसके पीछे खड़ी कोमलांगिनी पर उसकी नज़र टिक जाती है। ऊपर से नीचे तक सादगी मे ढकी वो नवयौवना सौम्य चेहरे से मुस्कराती अब शीबू को देख रही थी। पर शीबू की उलझी नज़र बस उसे ताके जा रही थी। 'शीबू ये मेरी पत्नी अरुणिमा है-अब भाई किस हालत मैं इसको मिला या किस हालत में मैंने इसको अपनी पत्नी बनाया ये मत पूछना -बस

अब यही मेरी पत्नी है और हमारे इस छोटे से परिवार का अहम हिस्सा भी'।

शीबू को किशन की हर बात पर हाँ में हाँ मिलाने की एक आदत भी थी। अब उसके चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ जाती है। किशन एक हाथ अरुणिमा के कंधे पर फैलाये और दूसरा हाथ शीबू के कंधे पर फैलाये अंदर आता है।

अब घर घर बन चुका था। एक स्वर पर वो मुस्कराता अरुणिमा की ओर देखता था। अरुणिमा भी पूर्ण निष्ठा और समर्पण के साथ उस घर पर छा गई थी जो दो भाइयों का घर था। कुछ दिनों में ही पूरा घर जैसे उसपर निर्भर हो गया था। अब शीबू अपनी हर जरूरत पर अरुणिमा के पास ही दौड़ता आता। वो भी उसके अनकहे स्वर को कितने अच्छे से समझ जाती थी|शीबू भी अरुणिमा को किशन की अनुपस्थिति में उसकी जगह उसको पाता था। दो दिनों से किशन घर नहीं आया था। बस एक खबर आई थी की कुछ जरूरी काम में फस गया है, चुनावों का समय है अभी दो चार दिन और लगेगें ।

अरुणिमा उदास सी कमरे में बैठी थी |एक ओर हथेलियों की तलहटी पर उसका चेहरा कुछ झुका सा था ,माथे की उलझन उलझी लटों की तरह उसके चेहरे से ढलकी कंधो तक फ़ैली थी |कंधो तक ढलके बालों पर धीरे धीरे मचलती उसकी उंगलिया मानो कोई गहन उलझन सुलझाने में लगी थी | शीबू वहाँ आता है, उसकी आहट भी उसको नहीं होती|शीबू आकर अरुणिमा का कंधा झंझोड़ता है|अरुणिमा चौंक कर देखती है ,सहसा उसके मुँह से किशन निकालने वाला था|

'ओह शीबू - बताओ क्या है - |'

उसका प्रश्न समझ कर वो आगे कहती है|

'तुम्हारे किशन भाई अभी किसी काम में उलझे है - अभी दो चार दिन और लगेंगे -|'एक गहरी आह के साथ वह कह गई |

'तुम बताओ क्या बात है -क्या ! अकेले परेशान हो रहे हो - अच्छा तो मुझे भी नहीं लग रहा - कोई बात नहीं ,तुम यही बैठ जाओ - मुझसे बातें करो थोड़ा वक़्त कटेगा |'

पता नहीं अरुणिमा की सूझबूझ थी या किशन की ट्रेनिंग कि अरुणिमा एक गूंगे लड़के से जिससे मिले अभी उसे बमुश्किल एक माह ही गुज़रा है, उससे आराम से बातें कर पा रही थी |

'तुम्हें कभी अपने गावँ की याद आती है - कभी सोचा की रुक्मणी दीदी कहाँ होगी - किशन को अपना गावँ अभी भी याद आता है ' वो कहती रही-'मैं किशन को पिछले एक वर्ष से जानती हूँ पर उसके विश्वास और अपनत्व भरे प्रेम से लगता है जैसे उसे वर्षो से जानती हूँ - एक दिन किशन की बांह को भेद्दती गोली निकाल गई थी (कहते कहते अरुणिमा जैसे खोती चली गई), वो घायल मेरे पास आया था - उस सरकारी हॉस्पिटल के सुकड़े कमरे में एक डॉक्टर और एक नर्स मौज़ूद थी - उसके साथी डॉक्टर को हड़का रहे थे ,उस रात हॉस्पिटल में मेरी नाइट शिफ्ट थी-डॉक्टर घबरा कर चले गए तभी उनका ध्यान मेरी ओर गया, वो मुझे भी धमकाने आगे बड़े - पर मेरी नज़र तो उस पल मुझे ताकती नजरों से मिली तो वहाँ से फिर न हट सकी - किसी के मूक शब्दों को पहली बार मैंने पढ़ा-फिर मैंने कुछ नहीं सुना बस किशन की मरहम पट्टी करने लगी -और उस अनजान पल के बाद मेरे जाने कितने पल सिलसिलेवार किशन से जुड़ते गए -मैं अपनी नानी के साथ किराए के एक छोटे से कमरे में रहती थी - उस रात (कहते कहते अरुणिमा के झील से किनारो के कोरो में एक उफनती लहर सी उमड़ने लगी थी) जब नानी की तेरहवीं निपटा कर मैं सोई थी - मकानमालिक का लड़का मेरा दरवाजा खटखटाने लगा -मैं घबरा गई - रात के सन्नाटे मेरे डर पर हावी हो गए-घबराते दरवाजे के नजदीक जा कर सांकल खोले बिना ही मैंने पूछा -उस ओर से आए चंद शब्दों के जवाब ने उसकी मंशा जता दी -मेरा डर लगातार मुझ पर हावी होता गया - होनी को जाने क्या मंजूर था -उस पल की क्या रज़ा थी – मेरी किस्मत का लेख की किशन वहाँ नहीं आता तो जाने क्या होता उस पल - वो कमजोर दरवाजा और उस पर मेरा कमजोर मन मेरी क्या इति करता - फिर वक़्त को कुछ और ही मंजूर था- उस निछिप्त पल में किशन की उपस्थिति मैं आज तक नहीं समझ पाई - फिर किशन मुझे यहाँ ले आया - उसके पूजा की थाली से लगाई रोली ही मेरे माथे का सिंदूर हो गई -और मैं सदा के लिए किशन की हो गई- अब जितना भी किशन की जानती जा रही हूँ - उससे उतनी ही जुड़ती जा रही हूँ- किशन की जान तो तुममे बसती है और मेरी किशन में -|'

अरुणिमा नहीं जानती थी की शीबू की कमजोर बुद्धि इस किस्से को कितना समझ पाई होगी |पर इस किस्से को बाँट के आंतरिक संतुष्टी जरूर हो रही थी उसे| 'वो तुम्हारे लिए परेशान रहता है - किशन चाहता है की तुम बाहर निकलो और दुनिया दारी खुद समझो और जीवन के अनुभवो का खुद सामना करो |'

तभी जाने क्या सोच कर शीबू ने अपना सिर अरुणिमा की गोद में रख दिया |अरुणिमा चौंक गई |पर उसका सिर वहाँ से न हटा सकी |

अरुणिमा आगे कुछ न कह सकी पर गहरी गहरी साँसे, बढ़ती धड़कनों और उलझन भरी निगाह से उसे देखती रही| फिर कुछ देर बाद अरुणिमा का पावँ सुन्न पड़ने लगता है ,वो किसी बुत सी बैठी थी|अब अगर उसने अपना पावँ न हिलाया तो उसका पूरा शरीर सुन्न पड़ जाएगा|वो झटके से अपना पावँ हिलाती है, हलचल से शीबू गर्दन उठाता है, जैसे एक झपकी ले कर उठा हो| और लगभग फुदकता वहाँ से चल देता है|अरुणिमा अनबुझी सी उसे दरवाजे से पार जाती देखती रहती है| अरुणिमा को हॉस्पिटल में नर्स के रूप में काम करने के बहुत से अनुभव थे, वो मानसिक रूप से कमजोर मरीजो को भी देख चुकी थी पर शीबू उसे वैसा न लगता|उसे लगता जैसे शीबू को भाई की देख रेख ओर अत्यधिक ख्याल ने उसको उसके बालपन से निकलने ही नहीं दिया|आज की स्थिति ने उसके मानसिक चक्षु खोल दिए|उसने सोचा अगर वो शीबू को उसकी उम्र के मुताबिक समझ तक ले आए तो ये किशन के लिए उसकी ओर से बहुत बड़ा उपहार होगा|अब जैसे अरुणिमा को नया काम मिल गया था|

अब कमर कस समग्रता से उस ओर लग गई|वो अब ज्यादा से ज्यादा समय शीबू के साथ बिताती थी उससे बातें करती थी, नए नए विषयों पर चर्चा करती (यघपी चर्चा एक तरफा होती)| शीबू भी अरुणिमा को अपने भाई के समान समझने लगा था|जैसे किशन से बात करते करते वो किशन की गोद में सर रख लेता था तो कभी किशन की बाजुओ में समा जाता|तो कभी कंधो पर

झूल जाता|पर अरुणिमा के लिए ये भयावह अनुभव था|अपनी उम्र के समतुल्य युवक के साथ उसका ऐसा अनुभव उसके नारी मन को दहला जाता था| पर अपने प्रण में अडिग अरुणिमा शीबू को समतुल्य बनाने को प्रणबद्ध थी| वो सांझ का धुंधलका था |

अरुणिमा कमरे में बत्ती न जला कर अपनी साड़ी बदल रही थी|तभी बेरोक शीबू वहाँ आ जाता है|आते ही उसकी नज़र सांझ की लाली और कमरे की कालिमा में घुलमिल घूमिल रौशनी में किसी बुत के उभारों पर टिक जाती है|वो वहीं ठहर जाता है|अरुणिमा भी वहीं थम जाती है|उस पल की कालिमा कमरे में लगातार हावी होती जा रही थी| खिड़की से झाँकता सूरज पूरी तरह विलुप्त हो चुका था |तभी धक सी छोड़े दिल से नज़र उठा कर अरुणिमा देखती है की दरवाजे की आकृती अब उसी की ओर बढ़ रही थी |वो काली छाया चलते चलते उसके नजदीक आकर रुक जाती है|अरुणिमा जाने क्यों प्रतिकार भी नहीं कर सकी और किसी बुत की तरह वहीं खड़ी रही|

छाया क्षण भर में ही उसके बहुत करीब तक आ जाती है| उसके बढ़ते हाथ बुत के उभारों पर ठहर से गए थे|उस पल की घबराहट सिर्फ तेज़ साँसों से पता चल रही थी|परछाई बुत के बहुत करीब पहुँच चुकी थी|बुत के हाथों से साड़ी का आखिरी छोर भी छूट जाता है|

सांझ के बाद गहरी रात की कालिमा पर धीरे धीरे सुबह की लालिमा हावी होती जा रही थी|सुबह की लाली फुदकती खिड़की से आती फर्श पर पड़ी धीरे धीरे दीवारों पर चढ़ने लगी थी|कमरे में फैलती कुछ और लालिमा की रौशनी में कमरा कुछ साफ दिखता है|अब कमरे में कोई हलचल का नामों निशान नहीं था|वहाँ का सब समान नियत स्थान पर था|

तभी वो क़दम तेज़ी से वहाँ आकर रुकते है और कमरे में अपनी सरसरी निगाह दौड़ा कर आवाज़ देते है-'अरुणिमा ?' वो वहाँ नहीं थी|किशन पूरे घर में दौड़ दौड़ कर अरुणिमा और शीबू को ढूँढता आवाज़ लगाता है |पर अगले ही पल साफ़ हो जाता है की दोनों ही घर पर नहीं है |वो घबरा जाता है उसकी सोच में बिजली की तरह ये पहला विचार कौंधता है कि उसकी दुश्मनी की आग कहीं उसके अबोध भाई और पत्नी के दामन तक कहीं नहीं पहुँच गई। वो जल्दी से अपने कमरे में आता है और यन्त्रवत गद्दे के नीचे से चाभी का गुच्छा निकालकर अलमारी खोलता है, फिर लॉकर की अंधेरी गुफा से तमंचा निकालता है की सहसा उसके हाथों से कुछ टकरा कर नीचे फ़र्श पर औंधे मुँह गिर पड़ता है|किशन हथेली में तमंचा जकड़े बाहर निकलने कदम बढ़ाता है, कि उसकी जूते की नोक से कागज़ का वो टुकड़ा टकरा कर कुछ दूर और लुढ़कता है|उससे नज़र हटा कर किशन जाना चाहता था पर उस पल जैसे वो कागज़ कोई सवाल था उस पल पर जिससे नज़र हटा कर भी किशन उससे नज़र नहीं हटा पाया|आखिर वो कागज़ उठा लेता है और खोल कर देखता है|वो खत था ऊपर किशन का ही नाम था,उसकी उतावली आंखे झट पट उसे पढ़ना शुरू कर देती है -|

किशन भैया,

भैया कहने योग्य तो नहीं पर इसके सिवा कह भी क्या सकता हूँ, तुम्हें तो अपना इष्ट देव माना है और कुछ नहीं|पर अब उस निष्ठा के योग्य भी मैं नहीं|सोचा तो था की तुम्हारे उस तमंचे से अपना अस्तित्व ही खत्म कर लूँ पर भाई इतना भयकूल ,कायर जीवन ज़ीने के बाद मुझमे इतनी हिम्मत कहाँ? तुम सोच रहे होगे की बच्चों सी बातों में उलझा रहने वाला भाई इतनी गहरी बात कैसे करने लगा|सब बताता हूँ भाई - तुम्हारे लाड़ और वक़्त की मार ने मुझे बच्चा और तुम्हें वक़्त से पहले ही बड़ा बना दिया -मैं ज़िंदगी को खिलौना मान बस खेलते जिए जा रहा था-पर अरुणिमा नाम की रौशनी ने मेरा ज्ञान चक्षु खोल दिया-अंदर के पुरुष ने बाल शीबू को सदा के लिए मिटा दिया-मैं खुद को जान समझ पाया पर उस समझ ने मुझको इतना नीचे गिरा लिया की अब कभी भी मैं तुम्हारे सामने आने का हौसला नहीं कर पाऊँगा - अरुणिमा दुनिया की सबसे सच्ची पत्नी है पर मैं दुनिया का सबसे बुरा भाई हूँ | मेरे जीवन के सवालों को सुलझाते उसने अपना जीवन ही उलझा लिया - जैसे समुद्र मंथन में विष और अमृत दोनों एक साथ निकले थे-वैसे ही बीती रात अमृत रूपी मेरी समझ और विष रूपी अरुणिमा मेरा संबंध निकला– अरुणिमा निर्दोष है, पूर्णतया निर्दोष-वो घर छोड़ कर चली गई है, मुझे नहीं पता कहाँ -पर उम्मीद है तुम बख़ूबी जानते होंगे - उसे घर वापस ले आना, मेरी हाथ जोड़ गुज़ारिश है चाहे मुझे कभी माफ़ मत करना भाई| इसलिए सदा के लिए तुमसे दूर जा रहा हूँ ,पर बेफिक्र रहो - मुझमे इतनी हिम्मत नहीं की आत्महत्या कर लूँ - मैं खुद नहीं जानता की खुद को खोजने जा रहा हूँ या खुद को खोने |

तुम अरुणिमा को वापस ले आना इसी प्रार्थना के साथ ..।

तुम्हारा कसूरवार भाई

शीबू

खत पढ़ते पढ़ते उस कठोर चेहरे पर खारे समंदर की ढ़ेरो लहरे उफन आई थी|काँपते पैर अब और उसका बोझा नहीं सह पाए ,अपनी मुट्ठी में खत भींचे वो फ़र्श पर लगभग गिर पड़ता है|उसके ज़ेहन में अरुणिमा का चेहरा घूम जाता है, जब अचानक उस आधी रात वो उसे बचाने पहुँचा था, जो पूछ रहा था - 'किशन अगर आज मेरे साथ कुछ बुरा हो जाता क्या तब भी तुम मुझे अपनाते -|'

'अरुणिमा पहले तो मैं ऐसा होने नहीं देता और दूसरी बात मैंने तुम्हारे हृदय से प्रेम किया है,शरीर से नहीं - |'

❊

Archana Thakur
w/o. Sgt. V. K. Thakur
11 Wg, Af
C/o 99 APO (Airport), Asam

साक्षात्कार

डॉ. सुधा ढींगरा

अमेरिकी कल्चर अपनाना ही तरक्की नहीं है !- जॉन

वे ऐसे कौन से प्रेरणा स्त्रोत थे जिन्होंने आप को भारतीय सभ्यता और संस्कृति की ओर प्रेरित किया ?

मिशिगन के हिन्दी-उर्दू क्लास में बैठकर जब मैं भारतीय सभ्यता के बारे में सीख रहा था, मुझे बहुत अच्छा लगा। मीराबाई की हसरतें, कबीरदास के दावे, मिर्ज़ा ग़ालिब की भक्ति, प्रेमचंद की नीवें, और इन सब के साथ शाहरुख़ ख़ान की गुदगुदाती हुई आवाज़ -- ये सब मुझे भारत की तरफ़ खींचे ला रहे थे।

❊

सुधा ओम ढींगरा : हिन्दू भवन (नॉर्थ कैरोलाईना, यूएसए) के खुले प्रांगण में एक सांस्कृतिक संध्या का आयोजन था | मैं उस कार्यक्रम की प्रेस कॉवरेज के लिए वहाँ गई थी| डॉ. अफ़रोज़ ताज बुलन्द स्वर में लोक गीत गा रहे थे और उनके साथ एक अमेरिकन हारमोनियम पर उन्हें संगत दे रहा था | जिस तरह वह झूम -झूम कर संगीत का आनन्द लेता हुआ श्रोताओं की तालियाँ और प्रशंसा बटोर रहा था, वह दृश्य देखने वाला था | कार्यक्रम के अंत में मंच संचालक ने जनता को उनका नाम **जॉन कॉल्डवेल** बताया | मेरा अन्वेषी और जिज्ञासु मन उन के बारे में जानने को उत्सुक हो गया | मुझे याद है, वह शनिवार की शाम थी और रविवार को सुबह के ठीक दस बजे 88.1 FM पर रेडियो प्रोग्राम शुरू हुआ, जिसमें जॉन कॉल्डवेल को फर्राटेदार हिन्दी बोलते सुना | इस कार्यक्रम की घोषणा शनिवार रात को हुई थी | रेडियो प्रोग्राम को कम्प्यूटर पर wknc.org पर भी सुन सकते हैं | मेरी कहानी 'एग्ज़िट' में भी इस बात की चर्चा है |

वर्तमान में जॉन कॉल्डवेल यूनिवर्सिटी ऑफ़ नार्थ कैरोलाईना में हिन्दी-उर्दू पढ़ाते हैं | जॉन जी के बारे में काफ़ी जानकारी प्राप्त करने के उपरांत मुझे लगा कि हिन्दी के इस साधक को आप सभी से मिलवाया जाए | विदेशों में हिन्दी के प्रचार -प्रसार में सिर्फ भारतीयों का ही नहीं बल्कि विदेशों के स्थानीय लोगों का भी योगदान है | दुःख इस बात का है कि अपने देश में हिन्दी भाषा को वह सराहना नहीं मिलती जो विदेशों में विदेशियों से मिलती है। सरल -सादा व्यक्तित्व, तन से अमेरिकन, मन से भारतीय जॉन कॉल्डवेल को मैं उनके ऑफिस में मिली | उल्लेखनीय है कि अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों में हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाएँ साथ -साथ पढ़ाई जाती हैं | इसलिए जॉन जी को मेरे प्रश्न दोनों भाषाओं के लेकर किए गए -

जॉन जी, आप यूनिवर्सिटी ऑफ़ नार्थ कैरोलाईना में हिन्दी-उर्दू पढ़ाते हैं...इसके बारे में कुछ बताएँ ?

मैं लगभग पंद्रह साल से हिन्दी-उर्दू पढ़ा रहा हूँ, कभी summer intensive course में और कभी study abroad में, और कभी academic year में। यूनिवर्सिटी ऑफ़ नार्थ कैरोलाईना (यू.ऐन.सी. चैपल हिल) में हमारा तीन साल का हिन्दी-उर्दू कोर्स है, Elementary, Intermediate, and Advanced । मैं तीनों लैवल पढ़ा चुका हूँ । इस साल यू.ऐन.सी. में Elementary हिन्दी-उर्दू में लगभग ६५ छात्र enrolled हैं। सब मिलाकर यू.ऐन.सी. के हिन्दी-उर्दू प्रोग्राम में डेढ़ सौ छात्र हैं। इस साल मैं Advanced Hindi और Elementary Hindi के दो sections पढ़ाऊँगा। यू.ऐन.सी. में मुझे मिलाकर हिन्दी-उर्दू के चार full-time अध्यापक हैं।

आप के पास अधिकतर कौन से बच्चे हिन्दी-उर्दू सीखने आते हैं?

सुधा जी, आप जानती हैं कि हिन्दी-उर्दू दुनिया की दूसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है, यानी पूरी दुनिया में अंग्रेज़ी और स्पैनिश से ज़्यादा लोग हिन्दी-उर्दू बोलते हैं। केवल मैंडरिन चाइनीज़ (चीनी भाषा) हिन्दी-उर्दू से ज़्यादा बोली जाती है। इस लिये बहुत छात्र हिन्दी-उर्दू सीखना चाहते हैं। इस के अलावा, अमेरिका में शिक्षा का सिस्टम कुछ भारत से अलग है। मतलब एक यूनिवर्सिटी का छात्र, जो भी कोर्स या मेजर कर रहा हो, उसको एक विदेशी भाषा (foreign language) लेनी ही होगी। तो हमारे क्लासों में

वे छात्र आते हैं जिन के मेजर दक्षिणी एशिया, राजनीति, व्यापार, क़ानून, स्वास्थ्य, धर्म, इतिहास, मानव-शास्त्र, समाज-शास्त्र, ललित कलाएँ, आदि होते हैं। इन में वे छात्र भी हैं जिनके माँ-बाप या नाना-नानी या दादा-दादी कभी भारत से आये थे और अमेरिका में बस गये।

(जॉन जी मैं आप को बताना चाहती हूँ कि डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल के आंकड़ों अनुसार हिन्दी विश्व में सर्वाधिक लोगों द्वारा बोली और समझी जाने वाली भाषा बन चुकी है | जिसकी संख्या चीन की भाषा मैंडरिन को पीछे छोड़ कर लगभग एक अरब तक पहुँच गई है)

जॉन कॉल्डवेल के भोले से चेहरे पर मुस्कराहट आई और बोले-- सुधा जी ये आँकड़े तो बहुत खुशी दे गए...बधाई |

क्या इन भाषाओं में मास्टर्स और पीऍच.डी प्रोग्राम भी है |

यू.ऐन.सी. में दक्षिणी एशियन विषय में इस समय मास्टर्स और पीएच.डी नहीं है हालाँकि हम इस को डेवलप कर रहे हैं। इस पर तेज़ी से काम चल रहा है। लेकिन जितने विषय मैंने अभी गिने, उन सब में मास्टर्स और पीऍच.डी के प्रोग्राम हैं और उन सब के लिये अगर छात्र का विषय दक्षिणी एशिया हो, तो हिन्दी-उर्दू की शिक्षा आवश्यक है।

आप से हिन्दी-उर्दू सुन कर मेरा जिज्ञासु मन यह जानना चाहता है कि आप का इन दोनों भाषाओं के प्रति प्रेम कैसे और कब हुआ ?

बहुत अच्छा प्रश्न पूछा है आपने, सुधा जी। एक ज़माने में मैं पश्चिमी शास्त्रीय संगीत में मिशिगन विश्वविद्यालय में मास्टर्स कर रहा था। उस दौर में मेरी दोस्ती हुई डा. अफ़रोज़ ताज से, जो मेरे साथ पुस्तकालय में काम करते थे। हम दोनों छात्र थे, जबकि अफ़रोज़ भाई मिशिगन के हिन्दी-उर्दू प्रोग्राम के टीचिंग असिस्टैंट भी थे। अफ़रोज़ भाई ने मेरा भारतीय संगीत से परिचय कराया। मेरा शौक़ फ़िल्मी गानों, ग़ज़लों, क़व्वालियों, और हिन्दी- उर्दू गीतों में बढ़ गया | जैसे-जैसे मेरा हिन्दुस्तानी संगीत का शौक़ बढ़ा, वैसे-वैसे मेरी हिन्दी-उर्दू सीखने की इच्छा भी बढ़ी।

वे ऐसे कौन से प्रेरणा स्त्रोत थे जिन्होंने आप को भारतीय सभ्यता और संस्कृति की ओर प्रेरित किया ?

मिशिगन के हिन्दी-उर्दू क्लास में बैठकर जब मैं भारतीय सभ्यता के बारे में सीख रहा था, मुझे बहुत अच्छा लगा। मीराबाई की हसरतें, कबीर-दास के दावे, मिर्ज़ा ग़ालिब की भक्ति, प्रेमचंद की नीवें, और इन सब के साथ शाहरुख़ ख़ान की गुदगुदाती हुई आवाज़ -- ये सब मुझे भारत की तरफ़ खींचे ला रहे थे।

आप हर वर्ष अमेरिका से कुछ विद्यार्थिओं के साथ भारत जाते हैं | वह क्या प्रोग्राम है , हमें उसके बारे में बताएँ ?

हमारी यूनिवर्सिटियों में study abroad का संकल्प बहुत महत्वपूर्ण है। विद्यार्थियों को उत्साहना मिलती है कि वे एक समर या एक समैस्टर किसी दूसरे देश की यूनिवर्सिटी में पढ़ें। पिछले चौदह साल से मैं प्रोफ़ेसर ताज के साथ यू.ऐन.सी. का "summer in India study abroad program चला रहा हूँ। हर साल, लगभग बीस-पच्चीस विद्यार्थी हमारे साथ भारत जाते हैं। वहाँ वे हिन्दी-उर्दू और भारतीय सभ्यता के कोर्स लेते हैं। क्लासों के साथ-साथ हम छात्रों को घुमाते भी हैं, दिल्ली, आगरा, अलीगढ़, जयपुर, फ़तहपुर-सीकरी, कभी नैनीताल तो कभी हरिद्वार, ऋषिकेश, गंगोत्री और गौमुख। दिल्ली में हम किसी विश्वविद्यालय के मेहमान बन जाते हैं, जैसे दिल्ली विश्वविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी, या जामिया मिलिया इस्लामिया। अलीगढ़ में छात्रों को अलग-अलग घरों में ठहराया जाता है ताकि उनको भारतीय घरेलू महौल का अनुभव भी मिल सके। यह प्रोग्राम छह हफ़्ते का होता है।

आप अमेरिकन हैं.. भारत में आप को किस तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है? कहने का अर्थ है कुछ ऐसे अनुभव जो जाने -अनजाने आप के साथ घटित हुए हों, हमारे साथ साझा करें ?

ओह...लम्बी साँस के बाद वे बोले --बहुत सी घटनाएँ हुईं, क्या -क्या बताऊँ | लेकिन मैं एक कहानी आपसे ज़रूर शेयर करूँगा। एक बार मैं अपने हिन्दी-उर्दू गुरू अफ़रोज़ जी के साथ हिमालय में यात्रा कर रहा था। एक ढाबे में हम चाय के लिये रुके और मैं कुछ और यात्रियों के साथ बातें करने लगा। एक आदमी मेरी हिन्दी-उर्दू सुनकर इतना ख़ुश हुआ कि वह "मेरा भारत महान" कहकर मेरे पैर छूने लगा। मैं हँसा और बोला, "मेरे पैर मत छुइये, मेरे गुरू के पैर छुइये, जिन्होंने मुझे हिन्दी-उर्दू सिखाई और जो मुझे यहाँ लाये हैं।" लेकिन वह आदमी मेरी बात समझ न सका। वह फिर बोला "आप इतनी अच्छी हिन्दी-उर्दू बोलते हैं। मेरा भारत महान !" कह कर फिर मेरे पैर छूने लगा। यह देखकर मुझे बहुत बुरा लगा। "भाई साहब," मैंने कहा, "आप मेरी हिन्दी-उर्दू से कम प्रभावित हैं, केवल मेरी गोरी चमड़ी से प्रभावित हो रहे हैं। अगर आप असल में समझते कि आपका भारत महान है तो आप उन लोगों के पैर छूते जो अपने देश और घर को छोड़कर, दूसरे

देशों में हिन्दी-उर्दू और भारतीय संस्कृति गोरों को पढ़ाते हैं।" यह एक छोटी सी घटना है, आप कहाँ तक सुनेंगी?

आप अमेरिका की संस्कृति में पले हैं और भारत की संस्कृति के प्रशंसक हैं| दोनों संस्कृतियों में आप क्या बदलना पसंद करेंगे या एक दूसरे से दोनों देश क्या सीख सकते हैं और क्या छोड़ा जा सकता है?

मैं पिछले बीस साल से भारत अक्सर जा रहा हूँ, और मैं कह सकता हूँ कि इतने सालों में दक्षिणी एशिया के अपर क्लास के वर्ग की संस्कृति और अमरीकी संस्कृति एक हद तक एक जैसे हो रहे हैं, ख़ासतौर से शहरों में । अफ़सोस की बात है कि भारत में लोग समझते हैं कि विकास का मतलब है अमरीकी संस्कृति अपनाना । वे लोग पश्चिम की भद्दी चीज़ें अपना रहे हैं और सोच रहे हैं कि हम तरक़्क़ी कर रहे हैं । दोनों देशों में कुछ ख़ूबियाँ हैं और कुछ बुराइयाँ । दक्षिणी एशिया में एक ख़ास उदारता और आदर है जो काश ! अमेरका में मिलता । अमेरिका में भिन्नता ज़रूर है, मगर दक्षिणी एशिया में बहुत ज़्यादा है, और फिर भी लोग एक दूसरे के साथ अधिकतर शांति से रहते हैं।

आप अमेरिकन हो कर हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और कई भाषाओं में रूचि रखते हैं | भारत में लोगों की अपनी राष्ट्र- भाषा हिन्दी के प्रति उदासीनता और अंग्रेज़ी के प्रति उदारता को जब आप देखते हैं तो कैसा महसूस होता है..?

मुझे अत्यन्त दुःख होता है जब भारत के लोग ख़ुद अपनी भाषा को नीचा समझते हैं । अंग्रेज़ी की तरह हिन्दी-उर्दू दुनिया के हर कोने में बोली जाती है, होंग-कोंग से लेकर सुरिनाम तक, त्रीनिदाद से लेकर सिंगापुर तक, लंदन से लेकर फ़ीजी तक । और जैसे मैंने पहले बताया, हिन्दी-उर्दू अंग्रेज़ी से ज़्यादा दुनिया में बोली जाती है । एक दिलचस्प बात बताऊँ, सुधा जी, कि मेरे अनुभव में, शिक्षित लोगों का दोष ज़्यादा है। जो लोग ज़्यादा पढ़े-लिखे न हों, उनको अति ख़ुशी होती है जब मैं उनसे हिन्दी-उर्दू में बात करता हूँ । लेकिन जब मैं किसी पढ़े-लिखे आदमी से हिन्दी-उर्दू में बात करता हूँ तो वह बहुत हैरान होता है और पूछता है कि आपने हिन्दी-उर्दू क्यों सीखी? फिर वही लोग मुझसे अंग्रेज़ी में बात करने की कोशिश करते हैं । ख़ैर, घर की मुर्ग़ी दाल बराबर, ख़ासतौर से उन लोगों के लिये जो पिज़्ज़ा और बर्गर खाना पसंद करते हैं। हिन्दी-उर्दू की परम्परा बहुत धनी है। जितने महान लेखकों ने हिन्दी-उर्दू की सेवा की, उतनी अंग्रेज़ी साहित्य में नहीं मिलती।

आप भारत में बहुत घूमे हैं और वहाँ का कौन सा पर्यटक स्थल आप को पसंद है और क्यों ?

इसके उत्तर में वे खिल- खिला कर हँस पड़े-अरे यह तो बहुत आसान सवाल है (मुझे ऐसा लगा जैसे स्कूल का बच्चा कह रहा हो गणित का प्रश्न बहुत आसान है), बेशक ताज महल, जहाँ जाकर लगता है कोई मेरा हाथ पकड़ लेता है और हर बार मन न चाहते हुए भी हाथ छुड़ाकर आना पड़ता है। वैसे भारत के कोने- कोने में चमत्कार हैं । ऐसी कोई जगह नहीं हैं भारत में जो मुझे पसंद न हो । दिल्ली और अलीगढ़ मेरे लिये घर से लगते हैं । मेरा बहुत अच्छा वक़्त बीता जयपुर के गुलाबी शहर में, और अभी तक मैं हिमालय के नज़ारे सपनों में देखता हूँ । कुछ साल पहले हमने दक्षिण की सैर की और मुझे कन्याकुमारी, केरल, मैसूर, और हैदराबाद बहुत अच्छे लगे । मैं फिर भी कहूँगा कि जो रोमांच मिलता है, वह ताज महल को देखकर ही मिलता है ।

कविता या कहानी लिखते हैं ?

मैं अंग्रेज़ी में कविताएँ लिखता हूँ, और आज कल मैं मिर्ज़ा ग़ालिब की ग़ज़लों का अनुवाद अंग्रेज़ी में कर रहा हूँ ।

आप की संगीत में बहुत रूचि है | रोज़ किसी न किसी कॉन्सर्ट में हिस्सा लेते हैं और कई वाद्ययंत्रों जिनमें हारमोनियम और बसून (अल्गोज़े की तरह का साज़) प्रमुख हैं, के वादक हैं आप| भारत के किस गायक या गायिका से आप प्रभावित हैं |

मुझे सब से अच्छे मुहम्मद रफ़ी लगते हैं, और आशा भोंसले । लता जी, मुकेश जी, और किशोर कुमार बेशक बहुत उम्दा गायक हैं, मगर रफ़ी और आशा मेरे सब से ज़्यादा पसंदीदा गायक हैं । रफ़ी और स्वर्गवासी शम्मी कपूर का क्या मेल था ! मुझे रफ़ी के ख़ुशनुमा गाने पसंद हैं । उन की ज़िन्दगी के आख़िरी भाग में लोगों ने उनसे रोते हुए गाने गवाए, जो उनके साथ बेइंसाफ़ी थी । और आज कल राहत फ़तह अली ख़ान मुझे सब से अच्छे लगते हैं।

भारत की कौन सी फ़िल्में आप को पसंद हैं ?

मुझे पुरानी फ़िल्में ज़्यादा पसंद हैं, जैसी राज कपूर की फ़िल्में, या मुग़ल-ए-आज़म और पाकीज़ा । नई फ़िल्मों में मुझे आमिर ख़ान का काम बहुत पसंद है, ख़ासतौर से ३ इडियट्स और तारे ज़मीन पर । मुझे ऐक्शन फ़िल्में बिलकुल नापसंद हैं । लोग कहते हैं कि आजकल अच्छे फ़िल्मी गाने नहीं आ रहे पर मैं इस बात को नहीं मानता हूँ । शंकर एहसन लौय, ए.आर. रहमान, और अमित त्रिवेदी बहुत उम्दा धुनें बना रहे हैं।

जॉन जी इंटरव्यू का समय देने के लिए धन्यवाद | सुधा जी मैं आपका आभारी हूँ जो आपने मुझे यह अवसर दिया|

❊

जिनसे मिलते हुए तौहीन हो खुद्दारी की
ऐसे बेफ़ैज़ अमीरों की तरफ़ क्या देखें
हारना अपना मुकद्दर ही जो ठहरा राना
ऐसी हालत में वज़ीरों की तरफ़ क्या देखें

❊

इस दौरे-तरक्की में थी मुफलिस की जवानी
भट्टी में सुलगते हुए ईंधन की तरह है

(ग़ज़ल गाँव) **- मुनव्वर राना**

चाय पीने का मेरा भी मन है....!

माना कि चाय हमारा राष्ट्रीय पेय है। लोग कश्मीर से कन्याकुमारी तक चाय के अलग-अलग स्वरूप के लुत्फ उठाते हैं। जैसे चाय हमारे लहू में घुलमिल गई हो, ऐसा नहीं लगता ? चाय के बारे में कोई जाति-पांति का भेद नहीं है और ना अमीरी-गरीबी का। चाय तो सर्वस्वीकृत है। चाय के बारे में कई विशेषताएं और तुकबन्दियाँ भी प्रसिद्ध हैं। कश्मीर में चाय असली पत्ती के बदले विशेष प्रकार की जडीबूटियों के कंदमूल को ही उबाला जाता है। उस में नमक डालकर नींबू का रस निचोड़ा जाता है। ऐसी चाय को सॉल्टी-टी कहते हैं। सॉल्टी-टी के साथ पतली-मीठी पापड जैसी रोटी सुबह के नाश्ते में ली जाती है। जिस के पीछे वैज्ञानिक कारण बताया जाता है कि पहाडियों की ऊंचाई के कारण डी-हाईड्रेशन होने का खतरा रहता है। उसी कारण नमक और नींबू का मिश्रण लिया जाता है। कश्मीर में जो नमक सप्लाई किया जाता है वह गुजरात के सुरेन्द्रनगर जिले के पाटड़ी और खाराघोड़ा क्षेत्र से प्रथम श्रेणी का होता है। जो आमतौर से यहाँ के लोंगों के नसीब कहाँ ?

दार्जिलिंग में चाय के पौधों की पत्ती को जब उबाली जाती है तो उसकी असली सुगंध हमारे मन को ताजगी से भर देती है। चूंकि उस में प्रकृति की अनूठी सुगंध होती है। दीव में वांझा जाति के लोग प्रतिदिन शाम के वक्त चाय के साथ दो केणां (छोटे पीले-सुनहरी छिलके वाले केले) का भोजन लेते हैं। उनकी चाय में दूध के बजाए पुदीना और नींबू के रस का मिश्रण होता है। दक्षिण भारत में ऊंचे कद की तांबे की केतली (चायदानी) के चोंगे में लकड़ी का डाट लगाया जाता है। जब डाट निकाला जाता है तो उस में से निकलती भाप की महक से तन-मन में स्फूर्ति का संचार होता है। तम्बाकु और कॉफी के मुकाबले चाय में निकोटिन की मात्रा मामूली होती है। पित्त (वात और कफ) प्रकृति के लोगों के लिए चाय तो मानो एसिड ही बन जाती है ! उत्तर में चाय और दक्षिण में कॉफी ज्यादा प्रिय होती है। कुछ दिनों पहले हुए सर्वेक्षण के अनुसार चाय पीने से हार्टअटेक की मात्रा में कमी होती है। मगर ऐसे सर्वेक्षण के बारे में दिन- प्रतिदिन राय में बदलाव आता रहता है।

हमारे समाज में बेटी जब बड़ी होती है तो सबसे पहले उन्हें चाय बनाने की तालीम दी जाती है, उसके बाद ही रसोई के विविध व्यंजन ! जब कोई अपने बेटे के लिए लड़की देखने जाते है तो वह लड़की चाय कैसी बनाती है, उन पर ही चयनकर्ता विशेष निर्भर रहते है। गुजराती में तो चाय के लिए नर-नारी जाति में उल्लेख किया जाता है। जैसे कि - `चा पीधी या चा पीधो (?)` मानों, हमारे लिए चाय ही सर्वधर्म की सुगंध फैलाती है ! ट्रेन में जब हम सफर करते है तो तड़के कांच की प्याली खनकने की आवाजें या प्लास्टीक की प्याली पर लंबे नाखूनवाली ऊंगली फिराकर कर्कश आवाजें करते चायवाले का शोर - `चाय बोलो... चाय..` - एलार्म की घंटी का कार्य करती है।

चाय के लिए महंगे पारदर्शक कांच के टी-सेट, सिरामिक, स्टील या सिल्वर और जर्मन मेटल के टी-सेट का उपयोग होता है। उसके अलावा प्लास्टिक, थर्मोकॉल और मिट्टी की कुल्हड़ों का भी उपयोग होता है। हमारे रेल मंत्री श्री लालूप्रसाद यादव ने तो भारतीय रेल को आदेश दे दिया था कि भारत के सभी रेलवे स्टेशनों पर कुल्हड़ों में ही चाय परोसी जाएं। चाय के लिए गुजराती में एक तुकबंदी है-

कपटी नर कॉफी पीवे, चतुर पीवे चा
दोढ़डाह्या दूध पीवे, मूरख पाडे ना !

अहमदाबाद में एल. डी. इंजिनियरींग कॉलेज और युनिवर्सिटी के सामने बैठकर कॉलेजियन लड़के-लड़कियों को कटिंग चाय का ऑर्डर देते देखना अपने आप में अलग अनुभव होता है। वहाँ पढ़ाई की कम और मौज-मस्ती की बातें ज्यादा होती है। मिरज़ापुर के पास `लक्की` की चाय जिसने न पी हो, वह भला अहमदावाद के बारे में क्या जाने? मैंने `लक्की` की चाय और मस्काबन खाकर कईं दिन गुज़ारे थे, वह स्मरण अब भी ताज़ा है। अहमदाबाद की पतंग और सूरत की टेक्षप्लाजा जैसी होटलों में पचास से पचहत्तर रुपये में एक कप चाय मिलती है। डायबिटीज के मरीज भी चाय की मोहकता को नजर अन्दाज नहीं कर पाते, इसी कारण तो सुगर-फ्री का आविष्कार हुआ है न? सचिवालय हो या सरकारी दफ्तर, चाय के बहाने कर्मचारी को बाहर ले जाकर आप छोटा-बड़ा सौदा कर सकते हैं। कईं को बाहर ले जाकर आप छोटा-बड़ा सौदा कर सकते हैं। कईं बार तो किसी खास हॉटल की चाय पीने के बारम्बार उसी हॉटल जाने को मन होता है, पूछो क्यूं ? अरे भाई ! उसकी चाय में अफ़ीम की डोंडी भी उबाली जाती है। थोड़ा नशा हो तो अच्छा लगता है न ? गुजरात के सुरेन्द्रनगर में `राज ` की चॉकलेटी चाय का मजा ही कुछ ऑर है। उसके मालिक सजुभा बापू काउन्टर पर बैठकर बोलते हों तो उन्हें

सुनने के लिये पाँच मिनट वही खड़े रहने का मन हो जाता है। आंबेडकर चौक में उनके हॉटल के सामने रेलवे की दीवार है। शाम को वहाँ मजदूर ईकठ्ठे होते हैं। दातून बेचनेवाले देवीपूजक भी होते हैं। नज़दीक में ही बटर पेपर के पैकिंग मटीरियल बनानेवाली फैक्ट्री भी है। उन सब के लिए सजुभा बापु अपने वेटर को हुक्म देते वो नमूना देखो - बे भींते (दीवार), दोढ़ कागळ (डेढ़ चाय कागज़ की फैक्ट्री), अडधी दातण (आधी दातूनवाला) आदि...

हमारे मित्र डॉ. रूपेन दवे सुबह दस बजे मरीजों पर गुस्सा करें और कम्पाउन्डर घनश्याम रोज़मर्रा की तरह डॉक्टर के खिलाफ गुस्सा कर दें, तब पास में रहे केमिस्ट जिज्ञेश को भी गुर्राहट करते हुए देखने का मौका कई मरीज़ों को भी मिला है। ऐसा क्यूं होता होगा? अरे भाई ! सुबह दस बजे का समय तो चाय का होता है, इस बात से अनजान मरीज़ क्या जानें?

हमारे गुजराती कविश्री माधव रामानुज तो कहते है कि मैं तो सुबह जल्दी जागकर खुद ही चाय बना लेता हूं। चाय का मीठापन और उसमें मरी-मसाला हो तो बात ही और होती है !

गुजरात के जानेमाने लोकसाहित्यकार-कलाकार बाबू राणपुरा चोटिला के पास जब फिल्म डाइरेक्टर केतन मेहता की फिल्म "मिर्चमसाला" में काम कर रहे थे, तब सुरेन्द्रनगर की पतरावाली (पत्तर की छत वाली) रेस्तरां में स्मिता पाटील, नसीरुद्दीन शाह, सुरेश ऑबेरोय और केतन मेहता ने वादीपरा चौक में चाय पी थी।

गुजरात में तो छोटे शहरों में चाय के हॉटल पर ऑर्डर देने की खास स्टाईल होती है। मानों दो मित्र रेस्तरां में गये और उनमें से एक कहेगा; "एक अडधी चा, पंखो चालु करो, छापुं लावो तो भाई! भजन वगाडोने यार ! बहार सायकल छे ऐमां ताळु नथी, ध्यान राखजे। राजेन्द्रभाई निकळे तो कहेजे के कौशिकभाई अने मनोजभाई अन्दर बेठा छे...! (एक आधी चाय, पंखा चालु करो, अखबार लाओ तो भाई! टेप रिकोरदार पर भजन बजाओ न यार! बाहर साईकिल रखी है उसमें ताला नहीं है, उसका ध्यान रखना| राजेन्द्रभाई यहाँ से निकले तो कहेना कि कौशिकभाई और मनोजभाई अंदर बैठे हैं..!) आधी चाय के ऑर्डर में हॉटल के वेटर को ही जैसे खरीद लिया हो? बारिश के मौसम में तो चाय का महत्व और भी बढ़ जाता है। अगर कोई खुश हो जाता है तो कहता है- चलो आइसक्रीम खाएं। उसमें अपनी खुशी को बॉटने का आनंद होता है। मगर, मन उदास हो, कोई दुख की बात हो या किसी बोझ को हल्का करने का मन हों। ऐसे समय कोई अपना मिल जाएँ तो सहज शब्द निकलते हैं आईए, चाय पीते हैं। अंत में हिन्दी कवि श्री ज्ञानप्रकाश विवेक के इन शब्दों को समझने की कोशिश करें...

शेष तो सबकुछ है, अमन है, सिर्फ कर्फ्यू की थोड़ी घुटन है
आप भी परेशान से हैं, चाय पीने का मेरा भी मन है !

❊

Gokul park Society, 80 Feet Road,
Surendranagar-363 002 Gujarat

लोकार्पण : नव्या के तीन कदम

संतरानगरी नागपुर मे 25 नवम्बर 2013 को विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मलेन के सभाखंड मे 'आभास-प्रफुल्ल मंच' के द्वारा 'नव्या त्रैमासिक' पत्रिका का लोकार्पण समारोह आयोजित हुआ | समारोह के अध्यक्ष वरिष्ठ पत्रकार व समाजसेवी श्री उमेश चौबे जी ने अपने वक्तव्य में कहा कि उपराजधानी में अबतक भाषा को लेकर कभी राजनीति नहीं हुई | बाल गंगाधर तिलक ने मराठी के अलावा हिन्दी में 'केसरी' निकाला| माधवराव सप्रे, रामभाऊ चिंचोलकर व वामन लाखे का हिन्दी के लिये योगदान अविस्मरणीय है | गजानन माधव मुक्तिबोध तो मील का पत्थर हैं | संतरानगरी मे हिन्दी-मराठी दो बहनों की तरह साथ साथ चल रही है | कार्यक्रम के मुख्य अतिथि स्वतंत्र पत्रकार श्री मनीष अवस्थी ने कहा कि हिन्दी को सहेजने मे इस नव्या पत्रिका का प्रयास सराहनीय हैं | सभी लोग मिलजुलकर आगे बढते हैं, तो राष्ट्रभाषा का सम्मान बढता है | साहित्य व सृजनात्मकता को केन्द्र में रखकर कुरीतियों के निर्मूलन में साहित्य की भूमिका को जोड़ा जाना चाहिए | सह संपादक शीला डोंगरे ने कहा कि अभिव्यक्ति के इस माध्यम से संपूर्ण भारत को जोडने की अभिलाषा है | विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मलेन की उपाध्यक्ष डॉ. करुणा उमरे ने कहा कि हिन्दी पत्रिकाओं को नियमित रूप से चलाना बड़ी चुनौती है, जो नव्या के संपादक श्री पंकज त्रिवेदी कर रहे हैं | नव्या के संपादक श्री पंकज त्रिवेदी ने कहा कि अहिन्दी क्षेत्र गुजरात से 'नव्या' के माध्यम से मैं एक साहित्यिक व सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने की भूमिका अदा करता हूँ| हालाँकि अहिन्दी क्षेत्र से हिन्दी पत्रिका का संपादन करना अपनेआप में साहस है, क्यूंकि उसमें भाषा के साथ प्रदेश की शैली बदली सी नज़र आती है | मगर हिन्दी अब किसी प्रदेश की सीमाओं से बंधी हुई नहीं रही | ऐसे समय मे गुजरात की हिन्दी पत्रिका के लिये भारत के अन्य प्रदेशों से हमें बड़ा सम्मान और स्नेह मिला है | यही दर्शाता है कि नव्या का स्वीकार और स्वागत देश के विभिन्न क्षेत्रों मे भी होने लगा हैं | इस समारोह में आभास-प्रफुल्ल मंच की अध्यक्षा मधु गुप्ता और गुलाम रसूल अशरफ और कई सम्माननीय साहित्यकार भी उपस्थित थे |

❊

गिरीश पंकज को पं. बृजलाल द्विवेदी स्मृति साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान

भोपाल, 14 जनवरी,2013। रायपुर से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका 'सद्भावना दर्पण' के संपादक गिरीश पंकज को पं. बृजलाल द्विवेदी स्मृति अखिल भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान-2012 से अलंकृत करने की घोषणा की गयी है। मीडिया विमर्श पत्रिका द्वारा प्रतिवर्ष साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले संपादकों को यह सम्मान प्रदान किया जाता है। इसके पूर्व यह सम्मान वीणा(इंदौर) के संपादक स्व. श्यामसुंदर व्यास, दस्तावेज (गोरखपुर) के संपादक डा. विश्वनाथप्रसाद तिवारी, कथादेश (दिल्ली) के संपादक हरिनारायण और अक्सर (जयपुर) के संपादक हेतु भारद्वाज को दिया जा चुका है।

मीडिया विमर्श के कार्यकारी संपादक संजय द्विवेदी ने यह जानकारी देते हुए बताया कि सम्मान के तहत ग्यारह हजार रुपए, शाल- श्रीफल, प्रतीक चिन्ह एवं मानपत्र देकर सम्मानित किया जाता है। इस वर्ष यह आयोजन भोपाल के भारतभवन में मार्च माह में सम्पन्न होगा। इस सम्मान के निर्णायक मंडल में सर्वश्री विश्वनाथ सचदेव, रमेश नैयर, डा. सुभद्रा राठौर, जयप्रकाश मानस एवं डा. श्रीकांत सिंह शामिल हैं। उन्होंने बताया कि सद्भावना दर्पण विगत 16 सालों से रायपुर से निरंतर प्रकाशित एक ऐसी पत्रिका है जिसने विविध भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य का अनुवाद प्रकाशित कर भाषाई सद्भभावना को स्थापित करने में उल्लेखनीय योगदान किया है। इसके पूर्व भी सद्भावना दर्पण के संपादन के लिए गिरीश पंकज को माधवराव सप्रे समाचारपत्र संग्रहालय, भोपाल की और से रामेश्वर गुरु पुरस्कार(1998), रमणिका फाउंडेशन सम्मान (2004), दुष्यन्तकुमार पाण्डुलिपि संग्रहालय का माखनलाल चतुर्वेदी सम्मान (2012) प्राप्त हो चुके है।पत्रिका के संपादक गिरीश पंकज अनके पुस्तकों के रचयिता भी है। उनके दस व्यंग्य सग्रह, पांच उपन्यास समेत 40 पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है। "नव्या' में उनका व्यंग्य स्तम्भ "व्यंग्य विश्व' नियमित रूप से प्रकाशित हो रहा है। श्री पंकज के व्यंग्य साहित्य पर इस समय चार छात्र पी-एच डी उपाधि के लिए शोध कार्य कर रहे है। कर्णाटक के नागराज, गिरीश पंकज के व्यंग्य साहित्य पर शोध कार्य करके डाक्टरेट की उपाधि हासिल कर चुके है। सात छात्रों ने श्री पंकज के साहित्य पर लघु शोध प्रबंध भी प्रस्तुत किया है।

❊

तेजेन्द्र शर्मा को हरियाणा अकादमी सम्मान

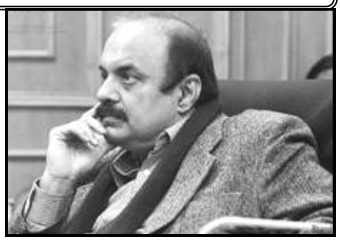

ज़किया ज़ुबैरी (ब्रिटेन की प्रमुख कथाकार काउंसलर) का कहानी पाठ सुनते तेजेन्द्र शर्मा, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
फोटो: भरत तिवारी

नई दिल्ली : 17 जनवरी। हरियाणा साहित्य अकादमी ने एक प्रेस विज्ञप्ति जारी करते हुए सूचना दी है कि अकादमी का अगला विशेष साहित्य सेवी सम्मान ब्रिटेन के हिंदी कहानीकार तेजेन्द्र शर्मा को उनके हिंदी साहित्य एवं भाषा के लिए उनकी सेवाओं के लिए प्रदान किया जाएगा। सम्मान के तहत 51,000 रूपए की धनराशी शामिल है।

तेजेन्द्र शर्मा के अब तक **सात कहानी संग्रह** काला सागर, ढिबरी टाइट, देह की कीमत, ये क्या हो गया, सीधी रेखा की परतें, कब्र का मुनाफा, दीवार एं रास्ता प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी कहानियों एवं गजलों की ऑडियो सी डी भी जारी हो चुकी हैं।

अवनीश सिंह को 2013 का विशेष सम्मान

जयपुर। जयपुर के भट्टारकजी की नसियां स्थित इन्द्रलोक सभागार में पं. झाबरमल्ल शर्मा स्मृति व्याख्यान समारोह का भव्य आयोजन किया गया। आयोजन का शुभारम्भ माँ सरस्वती के समक्ष जनरल वी.के. सिंह जी और गुलाब कोठारी जी द्वारा दीप प्रज्वलन से हुआ। इस कार्यक्रम में मुख्य वक्ता एवं विशिष्ट अतिथि पूर्व सेनाध्यक्ष जनरल वी.के. सिंह रहे जबकि पत्रिका समूह के प्रधान सम्पादक गुलाब कोठारी जी ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की।

तत्पश्चात जनरल वी के सिंह जी और गुलाब कोठारी जी के कर-कमलों से अवनीश सिंह चौहान को सम्मानित किया गया। पत्रिका का वार्षिक 'सृजनात्मक साहित्य सम्मान-2013 के अंतर्गत श्री चौहान को 11000 रू. नकद, सम्मान पत्र और श्रीफल प्रदान किया गया। राजस्थान पत्रिका की ओर से हर साल दिए जाने वाले सृजनात्मक साहित्य पुरस्कारों की घोषणा पहले ही कर दी गई थी। कविता में पहला पुरस्कार युवा कवि अवनीश सिंह चौहान के गीतों को दिया गया। इटावा में जन्मे अवनीश सिंह चौहान युवा कवियों में अपना अहम स्थान रखते हैं।

'रंग ज़िन्दगी की तरह होते हैं'

'वास्तव में कला मन की वह अभिव्यक्ति है जिससे यथार्थ की धारा फूटती है । इस अभिव्यक्ति के अलग अलग माध्यम हैं, कला एक ओर सौंदर्य का आयाम है, वही दूसरी तरफ चेतावनी का भी... ! वह सहज ढंग से मन पर अपना असर छोड जाती है । साहित्यकार समाज को शब्दों में व्यक्त करता है और रंगो को कलाकार कल्पना और यथार्थ का सृजनात्मक रुप देकर बहुत कुछ अनकहा कहकर हमें आगाह कर देता है...'

रंगों से अजीब–सा रिश्ता है मेरा...जब कोई नहीं होता मेरे इर्द–गिर्द, तब भी ये साथ होते हैं, सुख में और दुःख में भी। असल में रंग जिंदगी की तरह होते हैं... इनसे मिलकर जो तसवीर उभरती है, वह ज़ेहन में तमाम पलों को जिन्दा कर देती है। जो कभी किसी के हिस्से के थे और नहीं भी.. ! कुछ खामोश रेखाएँ भी हैं जो खामोश रहकर भी खामोश नहीं हैं। व्यथा है इन रेखाओं में, उदासी है, एक अर्थहीन पीड़ा, संघर्ष और स्मृतियों के बीज भी...

असल में मेरे ऑब्जेक्ट मेरे करीबी हैं.. आम जगहों के आम लोग..कुछ बेहद खास..हाँ, उनके अन्तःकरण में घुसने की कोशिश भर है..और उन्हें आकार ध्रंग देकर एक यथार्थवादी चित्रण करने की कोशिश असल में अपनी कृतियों में सार्थकता तलाशता हूँ.. एकरसता क्लासिक सिनेमा की तरह, या गढने की कोशिश...

वास्तव में मेरी कला ऑब्जर्वेशन पर आधारित है...जो देखता हूँ महसूस करता हूँ या यूँ कहें कि जीता हूँ या जो अनकहा रह गया हो उसे रंगने की कोशिश...ज्यादातर लाइफ स्कैप्स । इनमें प्रयोग भी शामिल हैं..सब्जेक्ट की जरूरतों के हिसाब से उसे अप्लाई करता हूँ..इनका ट्रीटमेंट पूरी तरह अमूर्त तो नहीं..हाँ, उसके करीब कह सकते हैं। और कल्पनाएँ बिलकुल सपाट तो नहीं, पर साफ नजर आती हैं। कुछ प्रिय रंग हैं, जिन्हें हर बार इस्तेमाल करने का जी करता है– जिनमें पीला गेरुआ मुझे जमीनी सुकून देता है तो नीला अवसाद व उसके पार जाने का सुख और सिंदूरी गजब की ऊर्जा एवं पारंपरिक, संस्कृति एवं सभ्यता। धूसर एवं काला से मुझे आधुनिक एवं समकालीन होने का बोध होता है।

मेरे सब्जेक्ट क्रमबद्ध चलते हैं, जिनमें उत्सव, चिड़ियाँ, पत्ते, रंगीन पतंगियाँ, महिलायें, चेहरे, मुखौटे, गुस्ताख आँखें, अस्त–व्यस्त कपड़े, बेवाक लड़कियों जैसे सौन्दर्य से भरा–पूरा संसार है, जिसमें तरह–तरह के लोग और चीजें बसती हैं। कुछ अलग तरह के लोग और भी हैं, जिनमें बाँसुरीवाला, कुल्फीवाला, लट्टू, खिलौनेवाला बैन्डमास्टर, ढोल–ताशे वाला... जो अपनी–अपनी कहानी बयां करते हैं..जिनमें संघर्ष है, बेपनाह लापरवाही, अल्लहड़पन और गम्भीरता भी।

चित्रकला में शुरुआत अप्रत्याशित रही। बचपन से ही शौक था। अजीब–सी बेचैनी और आकर्षण था कला को लेकर..जो खींचता चला जाता। इसे गम्भीरता से समझने में थोड़ा वक्त लगा। तकरीबन दो दशक पहले इलाहाबाद प्रवास के दौरान, इलाहाबाद संग्रहालय में जब मेरे गुरु चित्रकार श्री बालादत्त पाण्डे जी का सान्निध्य मिला, उनसे चित्रकला की बारीकियाँ, ढंग और कला का असल मतलब, एक दिशा उनसे मिली। लगभग 5–6 वर्ष उनसे शिक्षा ली, उनके सान्निध्य में संग्रहालय में रहकर काम किया। तभी यह अहसास हुआ कि बिना कला के जीवन अब सहज नहीं है। एक दशक तक इलाहाबाद में काम करने के बाद सन् 2000 में दिल्ली आ गया और अब यहीं रहकर काम कर रहा हूँ। तैल, एक्रेलिक, वाटर कलर, ग्राफिक्स चारकोल, मिक्सड मीडिया और कम्पयूटर ग्राफिक्स इत्यादि मेरे माध्यम हैं, तैलीय माध्यम में काम करने में बड़ा सुकून मिलता है, अनुप्रयोग जारी रहेंगे।

– विजेन्द्र एस विज